विकास - विमर्श

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर अनन्तश्री
विभूषित जगद्गुरु
शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

विकाश-विमर्श

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती
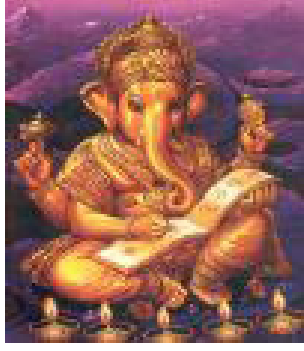
प्रकाशन – प्रशस्ति

''स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान''– श्रीगोवर्द्धनमठपुरापीठ – पुरीका

१२४ वाँ पुष्प

विकास – विमर्श

प्रथम संस्करण वि. स. २०७२, सन् २०१५

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य – गोवर्द्धनमठ – पुरीपीठ

पुरी १ (ओडिशा), ७५२००१

भारत

विकास - विमर्श

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

प्रकाशकीय

सहृदय पाठकवृन्द! सस्नेह स्मरण तथा अभिनन्दन।

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती - महाभाग - विरचित 'विकाश -विमर्श (विकास-विमर्श)' नामक यह ग्रन्थ श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठसे प्रकाशित १२४वाँ पुष्प है। इसके अध्ययन और अनुशीलनसे यह तथ्य उद्भासित होता है कि चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड जिस चित्प्रकाश सर्वाश्रय सर्वेश्वरका स्फुरणरूप विकाश है, उसे आत्मीय और आत्मरूपसे वरणीय समझकर तदर्थ जीवनका उपयोग और विनियोग वास्तव विकाश है; न कि बहिर्मुखता और विषयलोलुपताकी पराकाष्ठाका नाम वास्तव विकाश है। यह सृष्टि सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी अभिव्यक्ति है; अत: इसमें उसकी अनुगति है। विविधता तथा असच्चिदानन्दरूपताके कारण जगत् विषम तथा सदोष है; जबकि अद्वितीय सच्चिदानन्दरूपताके कारण इसमें अनुगत ब्रह्म सम तथा निर्दोष है। अत एव ब्रह्मकी वरणीयता सिद्ध है और उसमें मनोनिवेश कर्त्तव्य है। जन्ममृत्युकी अनादि अजस्रपरम्परारूप संसृतिचक्रके विलोपकी यह निगमागमसम्मत स्वस्थविधा है।

वस्तुके अस्तित्वका साधक तथा उसकी उपयोगिताका उद्दीपक धर्म है। धर्मविहीन अर्थका पर्यवसान अनर्थ है और धर्मविहीन कामका पर्यवसान परिताप है; जब कि धर्मसम्मत अर्थका पर्यवसान स्वस्थ - सुपुष्ट - अनासक्त सार्थक जीवन है तथा धर्मसम्मत कामका पर्यवसान स्थिर आह्लाद है।

दिव्य गन्धसम्पन्न पृथ्वी, दिव्य रससम्पन्न जल, दिव्य रूपसम्पन्न तेज, पुण्य स्पर्शसम्पन्न वायु और पुण्य शब्दसम्पन्न आकाशको विकृत, दूषित तथा कुपित (क्षुब्ध) करनेके प्रकल्पोंको विकास सिद्ध करना अनर्गल प्रयास है। मृत्यु, अज्ञान और दु:खके अपहारक वास्तव चाहके विषय सत्, चित् तथा आनन्दस्वरूप जीवनधन जगदीश्वरमें अनास्था उत्पन्न करनेके प्रकल्पोंको अर्थात् मानवजीवनकी अपूर्वताके विलोपको विकास सिद्ध करना जघन्य अपराध है। तद्वत् मानवोचित न्यायोपार्जित विधासे जीवनयापनको असम्भव करनेके प्रकल्पोंको विकास सिद्ध करना दु:साहसमात्र है। अत एव दूषित पर्यावरण,नास्तिकता तथा महँगाई-रहित विकासको सनातन शास्त्रसम्मत-विधासे परिभाषित तथा क्रियान्वित करनेकी नितान्त आवश्यकता है।

ध्यान रहे; तत्त्वदर्शी महर्षियों और मुनियों द्वारा दृष्ट और प्रयुवत कृषि, भवन, शिक्षा, रक्षा, न्याय, वाणिज्य, विवाह, यज्ञ, दान, तप, देवार्चन, अग्निहोत्रादि लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके साधनोंको परिष्कृत और क्रियान्वित करनेमें हम अवश्य ही अधिकृत हैं; परन्तु कृषि तथा यज्ञादिसे सम्बद्ध सनातन

विज्ञानका परित्याग कर मन:कल्पित नवीन उद्भावना और प्रयोगका आलम्बन लेने पर विकासके स्थानपर विनाशका पथ ही प्रशस्त कर सकते हैं । उन प्राचीन वैदिक महर्षियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है । परन्तु जो अज्ञानी उनका अनादर करके अपने मन:कल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सब उपाय और प्रयत्न पुन:-पुन: निष्फल होते हैं। अत एव सनातन वैदिक आर्यपरम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, रक्षा, सेवा, न्याय, चिकित्सा, यातायात, उत्सव - त्योहार, विवाह, देवसंस्थानादिका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप बोध और उपयोग ही सर्वहितप्रद और सुखप्रद है।

भवदीय

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

निज सचिव

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ

पुरी . ओडिशा (भारत)

ज्येष्ठकृष्णपञ्चमी - वि.स.२०७२; हरिद्वार

विकास - विमर्श

शान्तिप्रशस्ति

स्वस्ति भवतु विप्रेभ्य: स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यश:।

गोभ्य: स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु जगत: शान्तिरस्तु वै।।

स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे।

शं प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु शं तथाऽऽत्मनि चास्तु न:।।

शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुव:स्व:शिवं तथा।

शान्तिरस्तु शिवं चाऽस्तु सर्वत: स्वस्तिरस्तु न:।।

त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि।

प्रजाः पालय देवेश शान्तिं कुरु जगत्पते।।

यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते।

दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञाय ग्रहशान्तिं समाचरेत्।।

(स्कन्दपुराण २ वैष्णव- उत्कलखण्ड २५.७०-७४)

''ब्राह्मणोंका नित्य और निस्सन्देह स्वस्ति (कल्याण) हो, क्षत्रियोंका कल्याण हो, गोवंशका स्वस्ति हो, प्रजावर्गका कल्याण हो, जगत् की शान्ति (स्वस्ति, सुमङ्गल) हो।।''

''नित्य ही द्विपद - मनुष्यादिका स्वस्ति हो, चतुष्पद - पशुओंका कल्याण हो, तद्वत् (वैसे ही) प्रजावर्गका कल्याण हो तथा हमारी आत्मा (बुद्धि)में शान्ति सन्निहित हो।।''

''देववृन्दकी शान्ति हो तथा भूः, भुवः, स्वः - संज्ञक त्रिभुवन शिवभावापन्न हों। सर्वत्र सर्वविध शान्ति हो और सुमङ्गल हो, हमारा सर्वत्र कल्याण हो।।''

''हे देव! आप जगत्के स्रष्टा हैं और इसके पुष्टिप्रदायक पोष्टास्वरूप पालक भी आप ही हैं। हे देवेश! प्रजावर्गका पालन करें। हे जगत्पते! सबको शान्तिसे समन्वित करें।।''

''हे भूपते! अभ्युदय तथा निःश्रेयसमें अधिकृत मनुष्यकी तदर्थ दिनचर्या और जीविकामें परिपन्थी दुष्टोंको परखकर उनका दमन करें। ग्रहमण्डल आपके अनुग्रहसे शान्तिसे समन्वित सुमङ्गल सिद्ध हो।''

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय
शान्तिप्रशस्ति
१. सनातन सिद्धान्त
२. तथ्यपरिज्ञान
३. पतन - पर्यालोचन
४. पुरुषार्थ - परिलोप
५. अर्थ - परिबोध
६. विकास - परियोजना
७. सनातन - प्रकल्प
८. सृष्टिचक्र - अनुवर्तन - अतिक्रम - प्रकल्प
प्रार्थना
अनुरोध
स्वस्तिप्रकाशन

१. सनातन सिद्धान्त

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

सच्चिदानन्दरूपाय प्रत्यगात्मस्वरूपिणे।

नित्याय विभुरूपाय सर्वरूपाय ते नम:।।

''सच्चिदानन्दरूपप्रत्यगात्मस्वरूप, नित्य – विभु – सर्वरूप अर्थात् कालकृत – देशकृत – वस्तुकृत – परिच्छेदशून्य अनन्तस्वरूप आपको नमस्कार।।''

माधव मोहन नीलघन नटवर, यदुकुलभूषण कृष्ण हरे।।

चिन्मय चिद्घन नीलमणि गिरिधर, प्रणतपाल सुखधाम हरे।।

हे भवविभव मुरलीधर नागर, सुखसागर अभिराम हरे।।

राधापति रसवर रसिकशेखर, मुरलीधर मम नाथ हरे।।

हे जीवनधन रसवर्षक सुन्दर, पुरुषोत्तम शिवधाम हरे।।

हे प्रिय रासेश्वर रसिक रसकर, रसरञ्जन रसरूप हरे।।

हे सर्व सर्वगत सकल सुखकर, भवतारक नररूप हरे।

हे जीवनधन धनद जगदीश्वर, दारुवदन जय देव हरे।।

१. सनातन सिद्धान्त

महाकल्पके प्रारम्भसे विश्वहृदय भारतकी ख्यातिका रहस्य वैदिक सनातन सिद्धान्त अवश्य ही आस्था योग्य है। कालगर्भित तथा कालातीत सर्व पदार्थोंका अधिगम इसके अनुशीलनसे सम्भव है। यह दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर सर्वदेशमें, सर्वकालमें भूमि, जल, तेज, वायु, आकाशसहित सर्व स्थावर – जङ्गम प्राणियोंके लिए सर्वविध सुमङ्गल है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्योपनिषत् ३.१४.१)–'निस्सन्देह यह सब सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अभिव्यक्ति होनेके कारण ब्रह्म है', 'अमृतस्य पुत्रा:' (श्वेताश्वतरोपनिषत् २.५)– 'सच्चिदानन्दस्वरूप अमृत संज्ञक सर्वेश्वरसे अभिव्यक्त पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश – सहित समस्त स्थावर – जङ्गम प्राणी अमृतपुत्र हैं ', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (महोपनिषत् ६.७१)– 'पृथ्वीसे उपलक्षित चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डसहित सर्व प्राणी परमात्मासे अभिव्यक्त परमात्मपरिवारके सदस्य सगे –

सम्बन्धी हैं ', 'सर्वेषां मङ्गलं भूयात्' (गरुडपुराण २.३५.५१; भविष्यपुराण २.३५.१४), 'सबका मङ्गल हो', 'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य' (श्रीमद्भागवत ५. १८.९) 'विश्वका कल्याण हो ', 'आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ' (पद्मपुराण, सृष्टि. १९.३५५, विष्णुधर्मोत्तर. ३.२५३.४४)– 'हिंसा – मिथ्याभाषणादि मानवोचितशीलके प्रतिकूल अप्रिय गतिविधियोंको दूसरोंके प्रति भी न करे' तथा 'सर्वभूतहिते रता:' (श्रीमद्भगवद्गीता ५.२५, १२.४) – 'सब प्राणियोंके हितमें रत' और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' – 'सत्य, शिव तथा सुन्दर आचरणसे सम्पन्न रहे' यह श्रौत – स्मार्त – पुराणेतिहास सम्मत सनातनसिद्धान्त है।

कालगर्भित और कालातीत सब वस्तुओंके ज्ञापक वेद हैं। वेदसम्मत कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डको न माननेपर सम्भावित विश्व नरक तथा नारकीय प्राणियोंका समुदाय ही शेष रहेगा। ब्रह्माण्डमें जो कुछ वस्तुगत तथा व्यक्तिगत दिव्यता है, वह लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके ख्यापक वेदसम्मत कर्मोपासनाके कारण ही है। जन्ममृत्युकी अजस्रपरम्पराका आत्यन्तिक उच्छेद संज्ञक कैवल्यकी सिद्धिका वेदान्तविज्ञानके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। इस सन्दर्भमें आदिराजा पृथुके प्रति गौरूपा भूदेवी पृथ्वीका यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।–

अस्मिँल्लोकेऽथवामुस्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि: ।

दृष्टा योगा: प्रयुवताश्च पुंसां श्रेय: प्रसिद्धये ।।

तानातिष्ठति य: सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान् ।

अवर: श्रद्धयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा।।

ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम्।

तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुन: पुन:।।

(श्रीमद्भागवत ४.१८.३-५)

''तत्त्वदर्शी महर्षियों और मुनियों द्वारा दृष्ट और प्रयुवत कृषि, भवन, शिक्षा, रक्षा, न्याय, वाणिज्य, विवाह, यज्ञ, दान, तप, देवार्चन, अग्निहोत्रादि लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके साधनोंको परिष्कृत और क्रियान्वित करनेमें हम अवश्य ही अधिकृत हैं; परन्तु कृषि तथा यज्ञादिसे सम्बद्ध सनातन विज्ञानका परित्याग कर मन:कल्पित नवीन उद्भावना और प्रयोगका आलम्बन लेने पर विकासके स्थानपर विनाशका पथ ही प्रशस्त कर सकते हैं । उन प्राचीन वैदिक महर्षियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है । परन्तु जो अज्ञानी उनका अनादर करके अपने मन:कल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सब उपाय और प्रयत्न पुन:-पुन: निष्फल होते हैं। अत एव सनातन वैदिक आर्यपरम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव – त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह, देवसंस्थानादिका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप बोध और क्रियान्वयनका प्रक्रम ही सर्वहितप्रद और सुखप्रद है।।"

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्।

ऊर्ध्वं चैव त्रयी विद्या सा भूतान् भावयत्युत।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ८९.७)

''खेती, गोपालन और वाणिज्य ये इसी लोकमें जीविकाके साधन हैं; परन्तु वेद ऊपरके लोकोंमें भी रक्षा करते हैं। वे यज्ञोंद्वारा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति तथा वृद्धिमें हेतु हैं । अभिप्राय यह है कि वेदसम्मत कृषि, गोरक्ष्य तथा वाणिज्यका सम्पादन और यज्ञार्थ उपयोग स्व - पर सर्वहितकारक है।।"

जब इस यान्त्रिक युगमें भी सनातन वैदिक आर्य हिन्दुओंका सनातन परम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादिका विज्ञान विश्वस्तरपर सर्वोत्कृष्ट है; तब सनातनसंस्कृतिके अनुसार स्वतन्त्र भारतमें भी शासनतन्त्र सुलभ न होना तथा सत्तालोलुप, अदूरदर्शी दिशाहीन शासनतन्त्रको सांस्कृतिक और सामाजिक किसी भी संस्थानके द्वारा चुनौती प्राप्त न होना हमारे अस्तित्व और आदर्शके विलोपका मुख्य कारण और भीषण अभिशाप है। अत: सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाजकी संरचना विश्वस्तरपर राजनीतिकी परिभाषा उद्घोषितकर उसे क्रियान्वित करनेके लिए स्वस्थ व्यूहरचना नितान्त अपेक्षित है।

''स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धि: लभते नर: ।" (श्रीमद्भगवद्गीता १८.४५)- ''अपने - अपने कर्मोंमें संलग्न मनुष्य संसिद्धि लाभ करता है।",''स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: ।।" (श्रीमद्भगवद्गीता १८.४६) - ''अपने वर्णाश्रमोचित कर्मके द्वारा अन्तर्यामीकी अभ्यर्चना कर मानव अभीष्ट सिद्धि लाभ करता है।", 'स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुण: परिकीर्तित:। विपर्ययस्तु दोष: स्यादुभयोरेष निश्चय:।।'(श्रीमद्भागवत ११.२१.२)- "अपने - अपने अधिकारमें जो निष्ठा है, वह गुण ख्यापित है। इसके विपरीत अपने अधिकारका अतिक्रमणकर किया गया व्यवहार दोष है। गुण - दोषके सम्बन्धमें यह सुनिश्चित सिद्धान्त है।।" इन भगवद्वचनोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि सनातनधर्ममें फलचौर्य (फलोपलब्धिमें भेदभाव) नहीं है । ब्रह्मणादिके सदृश शूद्रादि भी अपने-अपने कर्मोंका भगवत्समर्पण बुद्धिसे अनुष्ठान कर सिद्धि, सद्गति और मुक्ति प्राप्त करनेमें अधिकृत हैं । अभिप्राय यह है कि अपने अधिकारकी सीमामें सम्प्राप्त कर्मोंके सम्पादनमें संलग्न व्यवितका सर्वविध उत्कर्ष सुनिश्चित है।

२. तथ्यपरिज्ञान

''न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति'' (श्रीमद्भागवत ५.११.१) –''विचारकुशल मनीषिगण प्रमाणविहीन व्यावहारिक मान्यताओंको ताकपर रखकर ही तत्त्वविचार करते हैं।। '', ''परावरदृश: शक्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति '' (महाभारत – शान्तिपर्व ३२९. ५१) –''सर्वात्मदर्शी तत्त्वज्ञकी ज्ञानात्मिका शक्ति कभी नष्ट नहीं होती; अर्थात् सदा तत्त्वदर्शनशीला होती है '', ''परावरविशेषज्ञा गन्तार: परमां गतिम् '' (महाभारत – अनुशासनपर्व १५१. १२) –''परम तत्त्वके विशेषज्ञकी परम तत्त्वतक गति सुनिश्चित है'',''गतिज्ञा: सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तका: '' (महाभारत – अनुशासनपर्व १५१. ११) –''अध्यात्मगति परमतत्त्वके चिन्तक समस्त प्राणियोंकी गतिके मर्मज्ञ होते हैं; अर्थात् 'परमतत्त्व सबका गन्तव्य है', उन्हें इस तथ्यका ज्ञान होता है।'', ''तत्त्वपक्षपातो हि स्वभावो धियाम्''– 'तथ्यात्मक तत्त्वका पक्षधर होना बुद्धि (जीव) का स्वभाव है' (बौद्धागमसिद्धान्त)

चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डमें परिलक्षित चमत्कृतिका एकमात्र हेतु वेदादिशास्त्रसम्मत कर्म तथा उपासनाका समुच्चित (सम्मिलित) अनुष्ठान है। वेदादिशास्त्रसम्मत कर्म तथा उपासनाका विलोप होनेपर मनुष्योंको गन्धर्व, देव, पितर आदि द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक (यज्ञादिपुण्यसारसर्वस्व) दिव्य देहकी समुपलब्धि असम्भव है। वेदोक्त कर्मोपासना और ज्ञानका विलोप होनेपर सृष्टिके नामपर नरक तथा नारकीय प्राणियोंका समुदाय ही शेष रहेगा।

उक्तरीतिसे वस्तुस्थितिको समझने और सत्यसहिष्णु होनेकी आवश्यकता है।

मानवजीवनका दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर अद्भुत महत्त्व है। इसमें कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय तथा प्राणोंके सहित अन्त:करणका सम्यक् विकास है। यह कर्मायतन, भोगायतन तथा ज्ञानायतन होनेके कारण देवदुर्लभ मान्य है। इसमें धर्मसम्पादन, वैराग्य, भक्ति और भगवत्प्रबोधकी शक्ति सन्निहित है। अत एव स्त्री तथा शूद्रादिकी भी देवदुर्लभता निसर्गसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें उन्हें मानवोचित स्नेह तथा सनातनसंस्कृतिके सर्वथा अनुरूप जीवनप्रणालीमें कुटीर तथा लघु उद्योगके सम्पादक शूद्रादिको वैश्य उचित लाभ देकर उन सामग्रियोंका उचित मूल्यपर विक्रय करते थे। वैश्य कृषि तथा गोपालनके द्वारा भी जीविकोपार्जन करते थे। क्षत्रिय राज्यसञ्चालन तथा धर्मयुद्धके द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। ब्राह्मण अध्यापन, दान, यज्ञादि विविध अनुष्ठान और खेत – खलिहान तथा अनाजमण्डीमें अवशिष्ट अन्नके सञ्चयसंज्ञक शिलोञ्छवृत्तिसे, अयाचितवृत्तिसे, यज्ञ – दान – अतिथिसेवा– देवपितृपोषण – तर्पणादि दैनिन्दिनकृत्यका निर्वाह करते थे। ब्रह्मचारी और सन्न्यासी भिक्षावृत्तिसे तथा वानप्रस्थ कन्द – मूल तथा फलके चयनसे जीवननिर्वाह करते थे।

उक्तरीतिसे सनातनसंस्कृतिमें सबकी जीविका जन्मसे आरक्षित थी।

लोकतान्त्रिक भारतमें विद्वेष और अदूरदर्शितापूर्ण आरक्षणपद्धतिमें उभयपक्षकी प्रतिभाकी हानि,प्रगतिकी

हानि, आरक्षणमें अधिकृतकी अपेक्षा नौकरीकी कमीके कारण अप्रायोगिकता,प्रतिशोधकी भावना और राष्ट्रकी पतनोन्मुखता, परतन्त्रता या विखण्डतारूप पाँच दोष सन्निहित हैं।

द्यूत, मद्य, हिंसादि अनर्थपर्यवसायी अर्थ; मोह, मूर्च्छा, कालातिक्रम और मृत्युपर्यवसायी काम; वर्णसङ्कर्णता तथा कर्मसङ्करतापर्यवसायी धर्म और देहात्मभावित मोक्षकी गाथाने; तद्वत् वर्ण, वेष, विधि – निरपेक्ष कर्मकाण्ड, विवेक तथा वैराग्यनिरपेक्ष उपासनाकाण्ड, अहिंसा–सत्यादि यमविरहित तद्वत् शौचसन्तोषादि नियम – निरपेक्ष योग, विवेकवैराग्यादिनिरपेक्ष वेदान्त; तद्वत् पन्थनिरपेक्षताके नामपर धर्मनिरपेक्ष शासनतन्त्रने पुरुषार्थविहीन मानवसमाजको प्रेय तथा श्रेय दोनोंसे वञ्चित बना दिया है।

जिन अर्थ और कामपर लट्टू होकर विश्वस्तरपर सामाजिक धरातलपर मनुष्योंने प्रबल बहुमतसे धर्म और मोक्षका परित्याग किया है, उन्हें मोक्षपर्यवसायी धर्मके बिना पुरुषार्थ बना पानेकी क्षमता न होनेके कारण पुरुषार्थविहीन मानवसमाजने स्वयंके और पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके सहित अन्य स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके विकृत तथा विलुप्त होनेका बानक बनाकर सबके हितपर पानी फेरनेका काम किया है।

इस यान्त्रिक युगमें प्रगतिके नाम पर धर्म और मोक्षप्रद ईश्वरको विकासका परिपन्थी माना जाता है । अत एव धर्म और मोक्ष नामक दो पुरुषार्थोंका त्याग यान्त्रिक युगका विशेष उपहार है । मद्य, द्यूत, हिंसा आदि अनर्थप्रभव आर्थिक परियोजनाओंके फलस्वरूप अर्थका पर्यवसान अनर्थमें परिलक्षित है । अत एव यान्त्रिकयुगमें अर्थ नामक पुरुषार्थका विलोप सुनिश्चित है। अश्लील मनोरञ्जन, मादक द्रव्य, कुल – शीलविहीन विवाह, देश – कालका अतिक्रमण और असंस्कृत जीवन तथा कुलधर्मविहीनतादि हेतुओंसे काम पुरुषार्थका विलोप सुनिश्चित है। प्रगतिके नामपर पुरुषार्थविहीन मानवजीवनकी संरचना भीषण अभिशाप और विचित्र विडम्बना है।

परमात्मा, उनकी शक्ति प्रकृति, प्रकृतिके परिकर आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा पुण्य और पुण्यात्माको प्रगतिके नामपर परिपन्थी मानना – जीवन तथा जगत् को सन्तप्त करनेका भीषण अभियान है।

ध्यान रहे; अपने अन्तर्यामित्वको सङ्कुचित तथा विलुप्तकर ही मनुष्य अधिक धन तथा अन्य भोग्य वस्तुओंका सञ्चय करता है। जब उसे अन्योंकी भूख – प्यास; सर्दी – गर्मी आदिकी व्याप्ति नहीं होती तथा सगे – सम्बन्धी और अपनी भी भूख – प्यास; सर्दी – गर्मी आदिकी व्याप्ति नहीं होती तब वह अपने अन्तर्यामित्वको सङ्कुचित तथा विलुप्तकर धनाढ्या होता है। इसके विपरीत जब उसे ब्रह्माण्डव्यापी तरु – लता – गुल्मादि उद्भिज्ज – संज्ञक स्थावर प्राणियोंकी तथा खटमल आदि स्वेदज, पक्षी – सर्प – मत्स्यादि अण्डज, मनुष्य – पश्वादि जरायुज संज्ञक जङ्गम प्राणियोंकी; तद्वत् देव – पितरादि अयोनिज तथा नारदादि मनसिज और स्वयम्भू प्राणियोंकी भी भूख – प्यास; सर्दी – गर्मी आदिकी व्याप्ति होने लगती है, तब उस सर्वभूतहृदयका विकसित अन्तर्यामित्व उसे सर्वेश्वरकल्प बना देता है।

'चिन्मूलं हि संसार:' (वराहोपनिषत् ३.७), 'प्रपञ्चाधाररूपेण' (आत्मप्रबोधोपनिषत् १२), 'चिद्विलासात्मकत्वात्' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३.१),'सर्वं चिन्मयमेव हि '(तेजोबिन्दूपनिषत् २.२६,२९), 'चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणम् ' (वराहोपनिषत् ३.७),'सर्वं चिन्मात्रमेव हि '(तेजोबिन्दूपनिषत् २.२५, २८,४०,४१),'ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम्' (तेजोबिन्दूपनिषत् ६.४२) आदि श्रुतियोंके

अनुशीलनसे जगत् चिदाश्रित, चिद्विलास, चिद्विवर्त, चिन्मय तथा चिन्मात्र सिद्ध है। 'चिदहं चिदिमे लोका:' (महोपनिषत् ६.७९), 'चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योति:स्वरूपकम्। संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत्।।' (महोपनिषत् ६.८१) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे दृश्यसहित द्रष्टा प्रत्यगात्माकी चिद्रूपता सिद्ध है।

'मैं चिद्रूप ब्रह्मस्वरूप होता हुआ प्राणी हूँ। मैं प्राणी होता हुआ मनुष्य हूँ। मैं मनुष्य होता हुआ सनातनी आर्य हूँ। मैं सनातनी आर्य होता हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हूँ।' – इस प्रकारका समष्टिभावित व्यष्टि – बोध अर्थात् सामान्यगर्भित विशेष परिबोध सर्वहितकारक तथा आत्मोद्धारक है। सामान्यके बोधसे स्थिर अस्तित्व और मानवोचित शीलकी और विशेषके बोधसे प्रशस्त उपयोगिताकी सिद्धि सुनिश्चित है।

उक्त तथ्यके अधिगमके अमोघ प्रभावसे सर्वात्मभावका समुदय सुनिश्चित है।

३. पतन - पर्यालोचन

सनातन वैदिक - आर्य - हिन्दुओंका उदात्त सिद्धान्त प्राय: ग्रन्थोंतक सीमित रह गया है। कूटज्ञ मेकालेकी चलायी गयी शिक्षा और तदनुकूल जीविकापद्धतिने संयुक्त परिवारको प्राय: विखण्डित कर दिया है। संयुक्त परिवारके विखण्डित होनेके कारण सनातन कुलधर्म, जातिधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलपुरोहित, कुलवधू, कुलवर, कुलपुरुष. कुलाचार, कुलोचित जीविका तथा कुलीनताका द्रुतगतिसे विलोप हो रहा है।

सनातनसंस्कृतिमें सबको नीति तथा अध्यात्मकी शिक्षा सुलभ थी। वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें साक्षरताको प्रश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त होनेपर भी परिश्रमके प्रति अनभिरुचि और न्यायपूर्वक जीविकोपार्जनके प्रति अनास्थाके कारण बेरोजगारी, आत्महत्यामें प्रवृत्ति, आक्रोश और चतुर्दिव् अराजकतापूर्ण वातावरण महामत्स्यन्यायको प्रोत्साहित कर रहा है।

आर्थिक विपन्नता, कामक्रोधकी किङ्करता और लोभकी पराकाष्ठाने मनुष्योंको पिशाचतुल्य उन्मत्त बनाना प्रारम्भ किया है।

धन, मान, प्राण तथा परिजनमें समासक्त तथा पार्टी और पन्थोंमें विभक्त हिन्दु अपने अस्तित्व और आदर्शको एवम् भारतके महत्त्वको सुव्यवस्थित रखनेमें सर्वथा असमर्थ है।

सन्धि, विग्रह (युद्ध), यान (आक्रमण), आसन (आत्मरक्षा), द्वैधीभाव (कपट) और समाश्रय (मित्रोंसे सहयोग लाभकर शत्रुजय)- संज्ञक छह राजगुण हैं। षड्यान्त्रकारियोंद्वारा भारतके अस्तित्व और आदर्शके विघातमें दुरभिसन्धिपूर्वक प्रयुक्त ये गुण सर्वदोषोंके मूल हैं। यह देश छलबलसमन्वित विधर्मियोंके द्वारा साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, इन्द्रजाल और मायाके विवश हतप्रभ, मूर्च्छित तथा मृतप्राय हो चुका है। मूर्च्छित शासक, पठित या अपठित मूर्ख मन्त्री और धूर्त पदाधिकारियोंके द्वारा क्रियान्वित प्रकल्प राष्ट्रके लिये विघातक सिद्ध हो रहे हैं।

सत्तालोलुपता और अदूरदर्शिताके कारण दिशाहीन शासनतन्त्र तथा व्यापारतन्त्रके वशीभूत हिन्दुओंके द्वारा ही हिन्दुओंके अस्तित्व और आदर्शका अपहण द्रुतगतिसे हो रहा है।

मेकालेके द्वारा प्रयुक्त और विनियुक्त क्लास, कोर्ट, क्लब, वर्णाश्रमविहीनता, वेदोंके प्रति अनास्थान्वित व्यक्तियोंके द्वारा उनकी असङ्गत व्याख्या एवम् विविध पन्थोंकी मान्यता नामक छह कूटनीति सनातनसंस्कृतिके विलोपमें पर्याप्त हेतु है। उसने 'क्लास तथा कोएजुकेशन ' के नामपर शील तथा सम्पत्तिके,

कोर्टके नामपर समय, सम्पत्ति तथा स्नेहके अपहरणका षड्यान्त्र चलाया । उसने वलबके नामपर अश्लील मनोरञ्जन और मादक द्रव्योंकी दासताका बीज बोया । उसने सनातनपरम्पराप्राप्त वर्णाश्रमव्यवस्थाको प्रगतिका परिपन्थी बताकर सनातन कुलाचार, कुलवधू, कुलवर, जातिधर्म, कुलदेवी, कुलदेव, कुलगुरु आदिके विलोपका एवम् वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करतासे दूषित सामाजिक संरचनाका प्रकल्प चलाया। उसने वेदोंके प्रति अनास्था और उनकी दूषित व्याख्यासे सनातनसंस्कृतिके विलोपका अभियान चलाया। उसने विविध पन्थोंकी मान्यताके नामपर सार्वभौम धर्मगुरुके रूपमें शङ्कराचार्योंके स्वस्थमार्गदर्शनसे देशको वञ्चितकर भारतके विखण्डनका षड्यान्त्र क्रियान्वित किया और आर्योंके लौकिक एवम् पारलौकिक उत्कर्ष और मोक्षका मार्ग अवरुद्ध किया।

नगर तथा महानगर – परियोजनाके नामपर ग्राम, वन, भूधर (पर्वत), भूधरके भी धारक गङ्गादि दिव्य जलधाराओंका तथा खनिज द्रव्योंका द्रुत गतिसे विलोप जनजीवनके लिए भीषण अभिशाप है।

सुवृष्टिके स्वाभाविक स्रोत वन, पर्वत और शास्त्रसम्मत यज्ञका विलोप एवम् विद्युत्, सिंचाई, स्वच्छता – आदिके नामपर सरिताओं, जलाशयों, समुद्रोंका शोषण तथा अशुद्धिकरण एवं यान्त्रिकविधासे प्रचुर जलकर्षणके कारण भूगर्भगत जलका स्खलन जलविहीन विनाशोन्मुख भूमण्डलका सूचक है।

शील, संयम, स्नेह, सुमति, सद्भाव, सहानुभूति, सेवा, सम्पत्ति, संयुक्त परिवार, श्रुतिस्मृतिसम्मत सदाचार तथा शूरता, ओजस्विता और अमोघदर्शिता – सम्पन्न सकल व्यवहार स्व – पर सर्वहितकर है।

ध्यान रहे; वेद कृषि, गौरक्ष्य, वाणिज्यादि सहित यज्ञ, दान, तप तथा आत्मविद्याके द्वारसे समस्त प्राणियोंके अभ्युदय और नि:श्रेयसमें हेतु हैं। उन वेदोंके अध्ययन तथा अध्यापनमें अथवा वेदोक्त यज्ञ – यागादि कर्मोंके सम्पादनमें विघ्न पहुँचानेवाले अराजक तत्त्वोंका वध करनेकी भावनासे ही लोकपितामह ब्रह्माजीने क्षत्रिय – जातिकी सृष्टि की –

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्।

ऊर्ध्वं चैव त्रयी विद्या सा भूतान् भावयत्युत॥

(महाभारत - शान्तिपर्व ८९.७)

तस्यां प्रवर्तमानायां ये स्युस्तत्परिपन्थिन:।

दस्यवस्तद्वधायेह ब्रह्मा क्षत्रमथासृजत्॥

(महाभारत - शान्तिपर्व ८९.८)

परन्तु वे क्षत्रिय भी इस लोकतान्त्रिक युगमें वेदविद्याविहीन जीवनयापनके तथा सत्तालोलुपता और अदूरदर्शिताके वशीभूत दिशाहीन शासनतन्त्रके पक्षधर हो गये हैं।

वर्तमानमें विकाशके नामपर भोजन (अन्न, जल), वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य (चिकित्सा), उत्सव – त्योहार, रक्षा, सेवा तथा न्याय एवम् विवाहादिके क्षेत्रमें ह्रास तथा विनाशोन्मुखता ही परिलक्षित है। शुद्ध और पर्याप्त अन्न, जल, वस्त्र तथा आवासादि सबको सुलभ नहीं हैं। शील, शुद्धि, स्वास्थ्य, शोभा, सुरक्षा और उपयोगिताके सर्वथा विपरीत वस्त्रोंका प्रचार – प्रसार घातक है। नगर तथा महानगर – परियोजनाके नामपर

ग्रामों, वनों, खनिज द्रव्यों, भूधरों (पर्वतों) तथा भूधरोंके भी धारक जलप्रपातोंका द्रुत गतिसे विलोप जनजीवनके लिए भीषण अभिशाप है।

नीति तथा अध्यात्मविहीन शिक्षा तथा शिक्षण – संस्थानोंका केवल धन, मानके लिए उपयोग एवम् विनियोग धर्मद्रोह और अराजकताका स्रोत है।

शुद्ध सुखद प्रचुर पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और गर्वके अभावमें स्वस्थजीवन सुदुर्लभ है।

केवल तात्कालिक मनोरञ्जन और मादक द्रव्योंके प्रचलनादिके कारण उत्सव – त्योहार – कथावार्तादिकी दिशाहीनता सुसंस्कृत जीवनके लिए घातक है।

उन्मादपूर्ण जन – जीवन, घातक अस्त्र – शस्त्रोंकी बहुलता, विपरीत सम्वाद और सञ्चार साधनोंकी सघनता तथा क्षात्रधर्मविहीनताके कारण प्रत्येक व्यक्ति और संस्थान अरक्षित है।

शिक्षा, रक्षा, संस्कृति, सेवा तथा धर्म और मोक्षके संस्थान धार्मिक और आध्यात्मिक दुर्ग मठ – मन्दिरोंकी विपन्नता तथा दिशाहीनता हिन्दुहितपर वज्रपात और सर्वहितपर आघात है।

सार्वभौम स्नेह तथा सहानुभूतिके अभावमें सेवाका विलोप परिलक्षित है। परम्पराप्राप्त जीविकाका विलोप तथा महायन्त्रोंके प्रचुर प्रयोगके कारण अधिकांश व्यक्तियोंका शोषण अनिवार्य है; अत: यान्त्रिक प्रकल्पोंका उपयोग तथा विनियोग जनसामान्यकी विपन्नतामें सुनिश्चित हेतु है।

दिशाहीन न्यायतन्त्र समय, स्नेह, शील, सम्पत्तिके शोषणका संस्थान सिद्ध है।

पूर्वेक्त भोजनादि सर्व प्रकल्प देहात्मवादसे भावित होनेके कारण मृत्यु, मूढ़ता तथा दु:खकी अत्यन्त सुलभताके सूचक हैं। भौतिक सुविधाकी प्रचुरता और धर्म तथा अध्यात्मसे सुदूरताके फलस्वरूप धृतिविहीनता (असहिष्णुता) और बहिर्मुखताकी पराकाष्ठा तथा शोकनिमग्नता सर्वत्र व्याप्त है।

परमात्मा, उनकी शक्ति प्रकृति, प्रकृतिके परिकर आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा पुण्य और पुण्यात्माको प्रगतिके नामपर परिपन्थी मानना – जीवन तथा जगत् को संतप्त करनेका भीषण अभियान है।

विवाहका विकृत प्रक्रम स्नेह, शील, स्वास्थ्य और शान्तिका घातक एवम् वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करताका विधायक है।

पूर्वोक्त भोजनादि सर्व प्रकल्प देहात्मवादसे सम्भावित होनेके कारण मृत्यु, मूढता तथा दु:खकी अत्यन्त सुलभताके सूचक हैं। भौतिक सुविधाकी प्रचुरता और धर्म तथा अध्यात्मसे सुदूरताके फलस्वरूप धृतिविहीनता (असहिष्णुता) और बहिर्मुखताकी पराकाष्ठा तथा शोकनिमग्नता सर्वत्र व्याप्त है।

'परन्तु प्रशस्त मार्ग तथा द्रुतगति – सम्पन्न यातायातके साधनोंकी विश्वस्तरपर बहुलता तथा विद्युत् – सम्पन्नताके कारण मार्गविहीन, द्रुतसाधनहीन, अन्धकारमय प्रकृति – परतन्त्र अतीतकी अपेक्षा सरल, सुगम, सुखद प्रगतिको स्वीकार करनेकी विवशता है । '

उक्त मनोभाव भी श्रवण सुखद किन्तु आपात रमणीय ही परिलक्षित है। प्रकाश और प्रशस्त पथकी सुलभताके कारण रात्रिके कार्यका दिनमें तथा दिनके कार्यका रात्रिमें सम्पादनके कारण आलस्य, कर्वशता,

आक्रोश, अराजकता तथा रुग्णता अनिवार्य है। वाहन तथा यन्त्रोंके सञ्चालनके लिए विद्युत्, डीजल, पेट्रोल आदिके अत्यधिक उपयोगसे प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिकी मन्दता, पृथिव्यादि भूत चतुष्टयकी मलिनता, दैवी प्रकोप, गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध (निर्लोभ), दानशील, गङ्गादि, हिमालयादि, तीर्थादि दिव्य अभिव्यक्तियों तथा सुवर्णादि, चन्दनादि दिव्य वस्तुओंका विलोप सुनिश्चित है।

महाययन्त्रोंके आविष्कार और प्रचुर प्रयोगसे आध्यात्मिक उत्कर्षका विलोप ही नहीं; अपितु भौतिक उत्कर्षका अवरोध और अन्त भी सुनिश्चित है। कारण यह है कि देहात्मवाद और पञ्चभूतोंके अनर्गल दोहनवादका नाम भौतिकवाद है। देहात्मवादसे अध्यात्मवादका विलोप सुनिश्चित है तथा पञ्चभूतोंके अनर्गल दोहनसे भौतिक उत्कर्षका अवरोध और अन्त भी अनिवार्य है।

उक्त हेतुओंसे महायन्त्रोंके निर्माणको श्रीमन्वादि महर्षियोंने उपपातकोंमें परिगणित किया है – 'महायन्त्रप्रवर्तनम्' (मनुस्मृति ११.६३)।

दालमें नमक, मिर्च तथा मशालाके तुल्य एवम् आँखोंमें अञ्जनके तुल्य यन्त्रोंका सीमित तथा सुखद प्रयोग ही श्रेयस्कर है।

महायन्त्रोंकी संरचनाका प्रयोजन कम समय (काल)में, कम क्षेत्र (देश) में, कम सहयोगियों और कम श्रमके द्वारा अधिक उपलब्धि तथा उपलब्ध सामग्रीके उपभोगसे सुख – शान्तिसमन्वित जीवनकी सिद्धि है। पाँव, पङ्ख और पहिया गतिसाधक उपकरण हैं। मनुष्योंमें और पशुओंमें पाँवका, पक्षी तथा अप्सराओंमें पाँव तथा पङ्खका और विविध यानों तथा यन्त्रोंमें केवल पहियेका या पहिया और पङ्खका, कठपुतलीमें केवल पाँवका सन्निवेश होता है। मोटरसाइकिल, बस. रेल, वायुयान आदि द्रुतगतिशील वाहन कम समयमें अधिक यात्राके साधन हैं। अन्तरिक्षावरोधक भवन कम क्षेत्रमें अधिक क्षेत्रके आधायक हैं। ट्रेक्टर आदि महायन्त्र कम सामयमें कम सहयोगियोंके द्वारा अधिक सामग्रीके साधक हैं। पेन, कील तथा कम्प्यूटर आदि कम श्रम और कम सामग्रीसे, कम समयमें अधिक तथा स्थिर कार्यके साधक हैं। तथापि व्यक्तिके पास समय तथा सहयोगीकी न्यूनता, श्रम तथा रुग्णताकी विपुलता तथा पर्यावरणकी मलिनता और सुख – शान्तिकी क्षीणता ही सुलभ है। अत: महायन्त्रोंसे अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धि सर्वथा असम्भव है।

स्रष्टा सर्वेश्वरने मृत्यु, अज्ञता तथा दु:खके आत्यन्तिक उच्छेदमें समर्थताकी सिद्धिरूप प्रयोजनसे जीवार्था सृष्टिकी संरचना की है; अत: तदर्थ जीवन तथा जगत् का सुमङ्गल उपयोग और विनियोग कर्त्तव्य है।

धर्मान्तरण, परिवारनियोजन, गर्भपात, गोवध, मेधाशक्ति – रक्षाशक्ति – वाणिज्यशक्ति और श्रमशक्तिके अनर्गल दोहन तथा दुरुपयोग आदि दुश्चक्रके कारण सनातनी – आर्य – हिन्दुओंका अस्तित्व तथा आदर्श तीव्रगतिसे विलुप्त हो रहा है।

विकासके नामपर गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ, दानशील, गङ्गादि; तद्वत् वन, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम, पुरी, सनातनशिक्षापद्धति, कृषि, कुटीर तथा लघु उद्योग, खनिज पदार्थ, सेवाप्रकल्पका विलोप, अराजक तत्त्वोंका राष्ट्रियस्तरपर वर्चस्व तथा देशकी सीमाका सङ्कोच, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष – संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयसे विहीन व्यक्ति और समाजका निर्माण नि:सन्देह विचारशीलोंको विह्वल बनानेवाला है।

स्वयंको अवैदिक कहनेवाले जैन तथा बौद्धोंके शाासन और वर्चस्वके समय भी अनुजकल्प अन्त्यजोंने

ब्राह्मणादिका साथ नहीं छोड़ा। तद्वत् विधर्मियोंके शासनकालमें भी उन्होंने ब्राह्मणादिका साथ नहीं छोड़ा। परन्तु अङ्ग्रेजोंकी दुरभिसन्धिके वशीभूत स्वयंको वैदिक तथा सुधारक माननेवाले गिने – चुने दिशाहीन हिन्दुओंके चपेटमें पड़कर अन्त्यजोंने ब्राह्मणादिको अपना शोषक समझकर उनका साथ छोड़ दिया।

अहिंसादिकी दिशाहीन परिभाषाने सज्जनताके नामपर अन्यायसहिष्णुता, कायरता तथा शूरता और ओजस्विताके नामपर आतङ्कप्रिय उग्रवादको प्रश्रय दिया है; जो कि सनातनसंस्कृतिके सर्वथा विरूप है। सनातनसंस्कृतिमें सुशीलता, शूरता और सत्पुरुषोंकी अनुगमनशीलताके फलस्वरूप ओजस्विता और अमोघदर्शितासे सम्पन्नता सज्जनता है। –

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।

(रामचरितमानस १. १७. ९.)

क्षुद्र स्वार्थके वशीभूत हिन्दुओंने क्षुद्र स्वार्थको ही नीति, प्रीति तथा परमार्थके रूपमें ख्यापित किया है, जो कि स्वार्थ तथा परमार्थका विघातक है; जबकि इन चारोंमें सामञ्जस्य साधकर सम्पन्न व्यवहार स्वयंके लिये तथा सबके लिये सुखकर – सुमङ्गल है।

स्वतन्त्र भारतमें जैन, बौद्ध, सिक्ख, अन्त्यज अपने उद्गमस्रोतसे वियुक्त होकर अपने अस्तित्व और आदर्शको विलुप्त कर रहे हैं तथा ब्राह्मणादि इनसे विहीन होकर अङ्गहीन तथा क्षीण हो रहे हैं। देशकी प्रतिभा तथा प्रगतिका क्षय हो रहा है। बेरोजगारी बढ़ रही है। प्रगतिके नामपर वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करता पनप रही है।

इस विसङ्गतिको विलुप्त करनेकी भावनासे परस्पर सद्भावपूर्ण सम्वादके द्वारा भ्रम तथा भूलका निवारण अपेक्षित है।

४. पुरुषार्थ - परिलोप

सनातनधर्ममें लक्ष्यका निर्धारण सुस्पष्ट है । इसके अनुसार प्रलयोत्तर महासर्गके प्रारम्भमें सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर जीवोंके देह, इन्द्रिय, अन्त:करण और प्राणोंसे युवत जीवनकी तथा बाह्य जगत् की संरचना इस अभिप्रायसे करते हैं कि पूर्व कल्पोंमें अकृतार्थ प्राणी पुरुषार्थचतुष्टयके माध्यमसे भोग और मोक्ष सुलभ कर सवें ।-

बुद्धीन्द्रियमन:प्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः ।

मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ।।

(श्रीमद्भागवत १०.८७.२)

श्रीमद्भागवत ११.२३.१८,१९ के अनुसार चोरी, हिंसा, अनृत (झूठ), दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद (फूट), वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, द्यूत (जूआ) और मद्य (मदिरा)रूप पन्द्रह अनर्थोंके चपेटसे अर्थको विमुवत रखना परमावश्यक है । तद्वत् कामको देशातिक्रम (उचित देशका अविचार), कालातिक्रम (उचित कालका अविचार), पात्रातिक्रम (गम्य, अगम्यरूप पात्रताका अविचार), अशुचि, असहमति, असंयम, निन्दा, वाचालता, अश्लीलता, मदविह्वलता, अभक्ष्यभक्षण, अतिसन्निकटता, अतिदूरता, अस्निग्धता और अनुदारतारूप पद्रह दोषोंसे विमुक्त रखना परमावश्यक है । तद्वत् धर्मको पुरुषार्थ-विहीनतासे बचानेके लिये अनधिकार चेष्टा, कालातिक्रम, देशातिक्रम, पात्रातिक्रम, दम्भ, द्रोह, अभिमान, ख्याति, असंयम, मिथ्या आहार-विहार, देवता-पितर-परलोक-परमेश्वर-परोपकार-पूर्वजन्म-पुनर्जन्ममें अनास्था, परोत्कर्षकी असहिष्णुता, आलस्य, असत्य और अधैर्यरूप पन्द्रह दोषोंसे विमुवत रखना आवश्यक है । तद्वत् मोक्षको पुरुषार्थविहीनतासे बचानेके लिये पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, मलसहिष्णुता, विक्षेपसहिष्णुता, अज्ञानकृत आवरणसहिष्णुता, प्रमाद, अहङ्कार, हरि-गुरुविमुखता, द्वैतसहिष्णुता, श्रवण-मनन-निदिध्यासनसे पराङ्मुखता, निर्गुण-निर्विशेषके अस्तित्वमें अनास्था, परमेश्वरकी परोक्षता, आत्माकी परिच्छिन्नता तथा असच्चिदानन्दरूपताकी मान्यतारूप पद्रह दोषोंका परित्याग परमावश्यक है ।

आहारार्थं समीहेत युवतं तत्प्राणधारणम् ।

तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ।।

(श्रीमद्भागवत ११.१८.३४)

अत्राहारार्थं कर्मकुर्यादनिन्द्यं

कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम्।

प्राणा: संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं

तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दु:खम्।।

(योगवासिष्ठ - निर्वाणप्रकरण २१.१०)

''सनातनधर्ममें आहारादिरूप अर्थकी सिद्धिके लिये अनिन्द्य कर्मरूप धर्मका सम्पादन विहित है । आहारादिसेवनरूप विषयोपभोगसंज्ञक काम लम्पटताके लिये नहीं, अपितु प्राणरक्षार्थ विहित है । प्राणसंधारण भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासाके लिये विहित है। तत्त्वजिज्ञासा तत्त्वबोध प्राप्तकर दु:खोंके आत्यन्तिक उच्छेदरूप मोक्षकी भावनासे विहित है।।''

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृत:।।

(श्रीमद्भागवत १.२.९)

''धर्मका वास्तव फल मोक्ष है । धर्मानुष्ठानसे सुलभ अर्थके द्वारा धर्मानुष्ठान और तत्त्वचिन्तनके अनुरूप जीवनकी समुपलब्धि विहित है । अर्थका विनियोग विषयलम्पटताकी परिपुष्टिमें निषिद्ध है ।।''

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभि:।।

(श्रीमद्भागवत १.२.१०)

''विषयोपभोगरूप कामकी सार्थकता जीवनलाभमें सन्निहित है, न कि इन्द्रियप्रीतिमें। जीवनलाभमें विनियुक्त कामसे अवशिष्ट कामके द्वारा इन्द्रियप्रीतिरूपा प्रसन्नता अर्थात् निर्मलता सुनिश्चित है। इन्द्रियप्रीतिरूपा निर्मलताकी सार्थकता इन्द्रियसमुदायरूप करणग्रामसे स्वयंको विविक्त और इनका प्रयोक्ता जीवरूप समझनेमें है। ऐसे जीवकी सार्थकता भी जीवनधन अद्वय विज्ञानघन ब्रह्मसंज्ञक परमात्मस्वरूप भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासामें सन्निहित है, न कि कर्मानुष्ठानके द्वारा लौकिक अर्थ, कामादिकी समुपलब्धिमें अर्थात् उत्क्रमण और पुनर्भवरूप संसृतिचक्रकी अनुवृत्तिमें सन्निहित है।।''

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम् ।

सम्प्रमोदमल: कामो भूय: स्वगुणवर्जित:।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १२३.१०)

''अर्थ, धर्म और कामको वास्तव पुरुषार्थका रूप प्रदान करनेके लिये तीनोंके मलका शोधन आवश्यक है । फलेच्छा धर्मका मल है, सङ्ग्रह अर्थका मल है, आमोद और प्रमोद कामका मल है ।।''

त्रिवर्गे त्रिविधा पीडानुबन्धास्त्रय एव च।

अनुबन्धा: शुभा ज्ञेया : पीडाश्च परिवर्जयेत्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १४०.५७)

''धर्मानुष्ठानमें लोभ, अर्थोपार्जनमें अनभिज्ञता और काममें शक्तिहीनता विघ्नकारक है। धर्मसे शान्ति, अर्थसे सर्वहितप्रद कर्म तथा विषयोपभोगरूप कामसे श्रेयस्कर जीवनकी समुपलब्धि होनेपर इनकी सार्थकता है।।''

यो धर्मार्थौ परित्यज्य काममेवानुवर्तते।

स धर्मार्थपरित्यागात् प्रज्ञानाशमिहार्च्छति।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १२३.१५)

''जो धर्म और अर्थका परित्याग करके केवल कामका ही सेवन करता है, वह धर्म और अर्थके परित्यागके फलस्वरूप इस जीवनकालमें बुद्धिनाशको प्राप्त होता है।।''

जीवनयापनकी सामग्रीरूप अर्थ तथा उसके सेवनसे सुखोपलब्धिरूप काम सबको अभीष्ट है। अत एव अर्थ और काम आस्तिक तथा नास्तिक उभयसम्मत पुरुषार्थ हैं। मनुष्योंकी ही नहीं, अपितु अन्य जङ्गम प्राणियोंकी; तद्वत् उद्भिज्जसंज्ञक तरु - लता - गुल्मादि स्थावर प्राणियोंकी भी प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके निरीक्षण तथा परीक्षणसे यह तथ्य सिद्ध है द्रव्योपार्जन और विषयोपभोगरूप काममें प्रीति तथा प्रवृत्ति स्वभावसिद्ध है।

इस महायान्त्रिक युगमें प्रतिभा तथा प्रगतिके नाम पर देहात्मवादके वशीभूत होकर धर्म और मोक्षप्रद ईश्वरको विकासका परिपन्थी माना जाता है । अत एव धर्म और मोक्ष नामक दो पुरुषार्थोंका त्याग यान्त्रिक युगका उपहार है । धर्म उच्छृङ्खलप्रवृत्तिका अवरोधक है और ईश्वर बहिर्मुखता तथा विषयाशाका विलोपक है। अत एव बहिर्मुख मनुष्योंद्वारा धर्म और ईश्वरकी उपेक्षा तथा इनका तिरस्कार स्वाभाविक है।

वस्तुस्थिति यह है कि अर्थोपार्जन, विषयोपभोग और उनमें अलिप्तता और सच्चिदानन्दस्वरूप सवेश्वरकी ओर अभिमुखताकी स्वस्थ तथा अमोघविधा धर्म है। मृत्यु, अज्ञता तथा दु:खापहारक और सर्वाभीष्ट अखण्ड सत्, अखण्ड चित् और अखण्ड आनन्द - प्रदायक ईश्वरकी प्रत्यगात्मरूपता; अत: परप्रमास्पदता स्वत: सिद्ध है। इस तथ्यका अपरिज्ञान ही ईशविमुखताका कारण है। धर्मेश्वरकी उपेक्षासे मृत्युग्रस्तता, अज्ञता तथा दु:खोपलब्धिका उच्छेद सर्वथा असम्भव है। अत: धर्म और ईश्वरकी उपेक्षा सुखमय जीवनसे सुदूरता है।

जीवित रहनेके लिए अन्न, जल, तेज, वायु, आकाशका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है। जितने समय तक प्राणी पार्थिव अन्नके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक जलके बिना जीवित नहीं रह सकता। पथ्यस्वरूप अभिमत अन्नके सेवनसे स्वोचित समयतक शरीरमें प्राण और प्रज्ञाशक्तिका सद्भावपूर्ण सञ्चार सुनिश्चित है। परन्तु पार्थिव अन्नकी अपेक्षा अन्नकारण सन्निकट निर्विशेष जलका अधिक महत्त्व आस्तिक - नास्तिक उभयसम्मत है। जलसुलभ होनेपर भूख और प्यास दोनोंकी निवृत्ति सम्भव है, परन्तु जलके अभावमें केवल अन्नके सेवनसे प्यासकी निवृत्ति असम्भव है।

प्रणश्यत्यम्बुपानेन बुभुक्षा च युधिष्ठिर।

तृषितस्य न चान्नेन पिपासाभिप्रणश्यति।।

(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दा०)

जितने समय तक प्राणी जलके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक शरीरमें स्थित तेज (ऊष्मा)के बिना जीवित नहीं रह सकता। जितने समय तक वह तेज (ऊष्मा) के बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक प्राणवायुके बिना जीवित नहीं रह सकता। जितने समय तक वह प्राणपवनके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक देहस्थित अवकाशप्रद आकाशके बिना जीवित नहीं रह सकता। कारण यह है कि पृथ्वीका कारण जल है। जलका कारण तेज है। तेजका कारण वायु है। वायुका कारण आकाश है। पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार; तेजमें शब्द, स्पर्श, रूप तीन; वायुमें शब्द तथा स्पर्श दो और आकाशमें केवल शब्द नामक गुण सन्निहित है। अत एव पृथ्वीसे जल, जलसे तेज, तेजसे वायु और वायुसे आकाश - उत्तरोत्तर सन्निकट निर्विशेष होनेके कारण पूर्वापेक्षा उत्तरका अधिक महत्त्व है। परन्तु ये पञ्चभूत जड होनेके कारण चेतन जीवके लिए प्रयुवत तथा विनियुवत हैं। जीवकी चाहके वास्तव विषय उसका वास्तवरूप जीवनधन अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप जगदीश्वर ही हैं।

प्रत्येक अंश स्वभावत: अपने अंशीकी ओर ही आकृष्ट होता है। यह सनातन सिद्धान्त है। पुष्प, फलादि पार्थव पदार्थ स्वाश्रयसे च्युत होकर तथा ऊपर उछाले जानेपर वेगके निरस्त होनेपर अंशी पृथ्वीसे समाकृष्ट होकर उसीकी ओर गतिशील होते हैं। जलप्रपात उसके उद्‌गमस्थल उदधिकी ओर ही समाकृष्ट होता है। दीपशिखा उसके उद्‌गमस्थल नभोमण्डलमें सन्निहित सूर्यकी ओर आकृष्ट होती है। तद्वत् जीव भी नामरूपात्मक जगत् में अनुगत अपने अंशी - सदृश सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी ओर ही आकृष्ट होता है। वे ही उसके विश्रामस्थान सिद्ध हैं।

जीव मृत्युके चपेटसे विनिर्मुक्त सत्संज्ञक मृत्युञ्जयपद अमृतत्व चाहता है। वह अज्ञताके चपेटसे विनिर्मुक्त चित्संज्ञक अखण्ड बोध चाहता है। वह दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध तापोंके चपेटसे विनिर्मुक्त अखण्ड आनन्द चाहता है। वह द्वैताभिनिवेशविनिर्मुक्त अद्वयात्मस्थिति चाहता है।

जीव यद्यपि अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप ही है; तथापि उसकी चाहका विषय सच्चिदानन्द उसी तरह है, जिस तरह जल अर्थात् उसके अधिदैव वरुणकी चाहका विषय जल।

जिस प्रकार जलकी प्यासको जल पिलाकर दूर करनेकी आवश्यकता नहीं; अपितु उसे मात्र निज जलरूपताकी स्मृति दिलानेकी आवश्यकता है; उसी प्रकार जीवको विषयसंसर्गसापेक्ष जीवन, बोध और आनन्द दिलानेकी आवश्यकता नहीं; अपितु उसे मात्र निज सच्चिदानन्दरूपताकी स्मृति दिलानेकी आवश्यकता है।

सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मात्मतत्त्व ही निर्विशेष तथा सविशेषरूपसे भजनीय है। उसके बिना जीवन और जगत्की कल्पना ही असम्भव है। वह सर्वोपरि प्रेमास्पद ही नहीं, अपितु एकमात्र परम प्रेमास्पद है।

जब स्वल्प - समयतक एक बारके अन्न और जलके सेवनके प्रभावसे कई घण्टेतक प्रज्ञा और प्राणशक्ति उज्जीवित रहती है, तब भगवदर्थ अखिल चेष्टाका सम्पादन करते हुए सर्वहित तथा आत्मकल्याणकी भावनासे सर्वकारण सर्वेश्वरका कुछ समयतक सम्पादित भजनके प्रभावसे अद्भुत सत्ता, चित्ता और प्रियताकी स्फूर्ति अर्थात् अलौकिक सुख तथा शान्ति वयों नहीं सम्भव है? जिस प्रकार, दाहक तथा

प्रकाशक प्रज्वलित अग्निके सेवनसे शीत तथा अन्धकारका निवारण सद्यः सम्भव है, उसी प्रकार अन्तरात्मस्वरूप प्रत्यगात्मरूप सच्चिदानन्दसंज्ञक परमात्माके आत्मीय और आत्मभावसे सेवनसे मृत्यु, अज्ञता और दुःखका निवारण सद्यः सम्भव है। सुषुप्तिमें सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरका सन्निकट संयोग सुलभ होनेके कारण देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसहित अभीष्टविषयसंस्पर्शज प्रिय, मोद तथा प्रमोदरूप फलात्मक आनन्दका; तद्वत् शीत – उष्ण, भूख – प्यास आदि द्वन्द्वोंके सहित मृत्यु, मोह तथा दुःखका अभानात्मक वियोग भगवद्भजनकी महत्ता तथा उपयोगिताकी सहिष्णुतामें युक्त उदाहरण है।

साक्षिसंवेद्य भूख – प्यास, सर्दी – गर्मी, अहन्ता और ममतादि द्वन्द्वोंके आश्रयभूत अहङ्कारकी अविद्याके द्वारसे आत्मतादात्म्यापन्नताकी अवस्था सुषुप्ति है। मृत्यु, मूर्खता, दुःखके भयसे अतीत सुषुप्तिगत अज्ञात भजनके अद्भुत प्रभावका परिज्ञान अनुभवसिद्ध तथा युक्तियुक्त है। शीत – उष्ण, भूख – प्यास, राग – द्वेषादि द्वन्द्वोंसे अतीत सुषुप्तिमें मृत्युकी अव्याप्ति तथा मूर्खता (अन्यमें अन्यबुद्धिरूप अध्यास)एवम् दैहिक, दैविक और भौतिक – त्रिविध तापोंकी अप्राप्ति तथा अव्याप्ति – अनुभवसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें व्यवहारदशामें बुद्धि, प्रयत्न, भावना तथा धृतिसहित अधिकार और अभिरुचिकी सीमामें सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्मकी उपासना अवश्य कर्त्तव्य है। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर महाकल्पके प्रारम्भमें अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे उत्पत्त्यादिकृत्योंके निर्वाहकी भावनासे हिरण्यगर्भात्मक सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति और गणपतिरूपसे व्यक्त होते हैं। ये पञ्चदेव और इनके शास्त्रसम्मत विविध अवतार सोपाधिकभूमिमें उपास्य हैं। निरुपाधिकभूमिमें देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसे अतीत प्रत्यगात्माकी ब्रह्मरूपताका और सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी प्रत्यगात्मरूपताका; तद्वत् ब्रह्मात्मतत्त्वमें प्रकृतिसहित प्रपञ्चकी अध्यस्तता; अत एव ब्रह्मात्मतत्त्वकी अद्वितीयताका अचञ्चल निश्चय कर्त्तव्य है।

ब्राह्ममुहूर्तमें स्नानके पूर्व तथा स्नानके पश्चात्, मध्याह्नकालमें, सन्ध्याकालमें तथा रात्रिमें शयनके पूर्व अथवा सूर्यादयकालमें, सूर्योदयके अनन्तर, मध्याह्नकालमें, अपराह्नकालमें और सूर्यास्तके समय (छान्दोग्योपनिषत् २.१४.१; महाभारत–शान्तिपर्व ३३७.३०) निज इष्टकी नित्य ही पाँच बार कम – से – कम पन्द्रह – पन्द्रह मिनटोंतक स्वहित तथा सर्वहितकी भावनासे आराधना अवश्य कर्त्तव्य है।

ध्यान रहे; योगमय, यज्ञमय तथा तपोमय जीवनकी संसिद्धि सुखमय जीवनकी निधि है।

द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि।

सुखत्यागे तपो योगं सर्वत्यागे समापना॥

(महाभारत–शान्तिपर्व २१९. १८)

''अविद्या – काम – कर्म तथा भोग्यवस्तुरूप द्रव्य और तज्जन्य सुख जीवके बन्धनमें हेतु हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग करनेके लिए यज्ञादि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिए व्रत, विषयोपभोगसुलभ सुखका त्याग करनेके लिए तप और सर्वदुःखमूल अविद्या – काम तथा कर्मका त्याग करनेके लिए अष्टाङ्गयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगका उपदेश दिया गया है। यही त्यागकी चरम अवधि है ॥''

वेद सदा सबके हितका ही उपदेश करते हैं। वे सदा सत्यका ही निरूपण करते हैं। वे मनुष्योंके लिये अद्रोह, दान तथा हितप्रद सत्य –सम्भाषणरूप तीन श्रेयस्कर व्रतका प्रतिपादन करते हैं। महर्षियोंने इस

वेदवचनका परिपालन किया है। व्यासादि महर्षियोंने भी इस वैदिकी गाथाका समादर किया है तथा उपदेश दिया है। इस वेदानुवचनका दृढता तथा दक्षतापूर्वक अनुपालन हमारा दायित्व है। –

त्रीण्येव तु पदान्याहु: पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।

न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत्।।

(महाभारत – अनुशासनपर्व १२०. १०)

जो अहिंसक सर्व प्राणियोंको अभय प्रदान करनेवाला है, वह अवश्य ही धर्मात्मा है। जो सबके प्रति दयालु, सबके प्रति सुकोमल, सर्वात्मदर्शी है, वह नि:सन्देह धर्मात्मा है। सबके प्रति सरल, सर्वहितैषी, सर्वहितज्ञ, सर्वहितमें तत्पर और समर्थ अवश्य ही सर्व श्रुतिस्वरूप है।

क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतो विहिंसक:।

धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते।।

(महाभारत – अनुशासनपर्व १४२. ३२)

''क्षमाशील, जितेन्द्रिय, क्रोधविजयी, धर्मनिष्ठ, अहिंसक और सदा धर्मपरायण मनुष्य ही धर्मके फलका भागी होता है।।''

धर्माचरणसे श्रेयकी समुपलब्धि और वृद्धि सुनिश्चित है, तद्वत् अधर्माचरणसे श्रेयकी अनुपलब्धि और अधोगति भी सुनिश्चित है। अत: श्रेयसंसिद्धिकी भावनासे सदा धर्माचरण ही कर्त्तव्य है। विधिवत् समनुष्ठित धर्म ही अनात्म – वस्तुओंके प्रति आसक्तिरूप रागका शोधनकर ब्रह्मानुसन्धान और ब्रह्मविज्ञानमें अधिकृत करता है, जब कि धर्मसे विमुखता अधोगतिमें हेतु है तथा विषयसुखकी समुपलब्धिकी भावनासे धर्मानुष्ठान प्रकृतिप्रदत्त संसृतिचक्रके अनुवर्तनमें हेतु है। धर्मनिष्ठा तथा ब्रह्मनिष्ठाविहीन व्यक्ति जन्म तथा मृत्युके अजस्र प्रवाहका अतिक्रमण नहीं कर पाता। विचारपूर्वक धर्माचरणके फलस्वरूप भवभयवारक – भवतापनिवारक – भवतारक आत्मबोध सुनिश्चित है।–

इज्याध्ययनदानानि तप: सत्यं क्षमा दम:।

अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविध: स्मृत:।।

(महाभारत – वनपर्व २.७५)

''यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा तथा इन्द्रियसहित मनका संयम और लोभका परित्याग – ये धर्मके आठ मार्ग अर्थात् धर्मसाधक हेतु हैं।।''

धर्मादुत्कृष्यते श्रेयस्तथाऽश्रेयोऽप्यधर्मत:।

रागवान् प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानवान् भवेत्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २०५. २६)

''धर्म करनेसे श्रेयकी वृद्धि होती है और अधर्माचरणसे व्यक्तिका अकल्याण होता है। विषयासक्त प्रकृति तथा प्राकृत प्रपञ्चमें भटकता रहता है, जब कि विरक्त आत्मबोध लाभकर मुक्त होता है।।''

व्यपेततन्द्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रित:।

चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व १४२. ३३)

''जो आलस्यरहित, धर्मात्मा, यथाशक्ति सत्पथका अनुगमन करनेवाला, सच्चरित्र और प्रबुद्ध होता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।।''

निवृत्ति: परमो धर्मो निवृत्ति: परमं सुखम्।

मनसा विनिवृत्तानां धर्मस्य निचयो महान्।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व १४५दा.)

''निवृत्ति परम धर्म है। निवृत्ति परम सुख है। जो मनसे सर्वविषयाशासे निवृत्त हो गये हैं, उन्हें विशाल धर्मराशिकी प्राप्ति होती है।।''
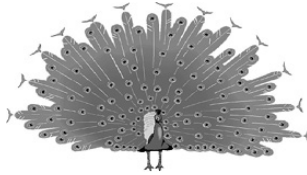
विकास - विमर्श

५. अर्थ - परिबोध

विद्या-भूमि-हिरण्य-पशु-धनधान्य-भाण्डोपस्कर - मित्रादीनामर्जनम्, अर्जितस्य च विवर्धनम् अर्थः।।

(कामसूत्र १)

''विद्या, भूमि, सुवर्णादि, पशु, धन - धान्य, वर्तन, ईन्धन, लोहेका सामान, वस्त्र, विस्तर आदि सुखद सामग्री तथा मित्रादिका अर्जन और अर्जितका वर्द्धन - यह सब अर्थ है।।"

अनर्थाः सर्व एवार्थाः सदर्थः परमार्थदृव्।

परमार्थो न लब्धश्चेदर्थशास्त्रं निरर्थकम्।।

(बोधसार)

''जितने भी अर्थ हैं, सब अनर्थ ही हैं। सार्थक अर्थ तो चिद्रूप आत्मा ही है। उस वास्तव अर्थरूप परम अर्थका लाभ नहीं हुआ तो अर्थशास्त्र व्यर्थ ही हुआ।।"

नाना मुनियोंके द्वारा विरचित नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र, चतुःषष्टिकलाशास्त्रादि - प्रभेदसंयुक्त अर्थशास्त्रका प्रयोजन धर्मानुकूल अर्थोपार्जन और सेवनसे सुखद जीवन - यापन तथा परम - अर्थ परमात्मसाक्षात्कारसे भवबन्धनिवारण है।

''यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः स अर्थः" (नीतिवाक्यामृतार्थसमुद्देश्य) के अनुसार सर्वविध प्रयोजनसाधकसामग्री अर्थ है। अर्थशास्त्रका प्रयोजन परमार्थसिद्धिमें सन्निहित है।

शशादिभेदतः पुंसामनुकूलादिभेदतः।

पद्मिन्यादिप्रभेदेन स्त्रीणां स्वीयादिभेदतः।।

तत्कामशास्त्रं सत्त्वादेर्लक्ष्म यत्रास्ति चोभयो:।।

(शुक्रनीति ४.३.५७)

‘‘जिस शास्त्रमें पुरुषोंके शश, मृग, अश्व, हस्तीरूप जातिगत भेदसे; अनुकूल, शठ एवं धृष्ट – नायकके भेदसे; स्त्रियोंके पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी तथा हस्तिनीरूप जातिगत भेदसे; स्वीया, परकीया और सामान्या आदि नायिकाभेदसे वर्णन हो तथा स्त्री – पुरुषोंके अनुरागादिभेदके लक्षणका विशेषरूपसे निरूपण हो, उसे कामशास्त्र कहा जाता है।।”

द्रव्यार्थस्पर्शसंयोगे या प्रीतिरुपजायते।

स कामश्चित्तसङ्कल्प: शरीरं नास्य दृश्यते।।

(महाभारत–वनपर्व ३३. ३०)

‘‘स्त्री, माला, चन्दनादि अभिमत द्रव्योंके स्पर्श और सुवर्णादि अभीष्ट धनके लाभसे जो प्रसन्नता होती है वह फलात्मक काम है तथा प्रियसङ्गमरूप समुपलब्धिका जो सङ्कल्प होता है, वह अभिव्यञ्जक संस्थानरूप काम है। इसका शरीर दृष्टिगोचर नहीं होता, अत: इसे अनङ्ग कहते हैं।।”

इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च।

विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते।।

स काम इति मे बुद्धि: कर्मणां फलमुत्तमम्।

(महाभारत – वनपर्व ३३.३७.१/२)

‘‘पाँचो ज्ञानेन्द्रियोंकी तद्वत् पञ्च कर्मेन्द्रियोंकी तथा मन और बुद्धिकी अपने विषयोंमें प्रवृत्ति होनेके समय जो प्रीति होती है, वह मेरी (मुझ भीमकी) समझमें काम है। वह सत्कर्मोंका उत्तम फल है।।”

मन्त्रौषधादि पूर्वकर्मनिरपेक्ष देवानुग्रहरूप अदृष्टके द्वारसे फलप्रद होते हैं, ऐसा कौलिक मानते हैं। अकृत ही हठात् फलप्रद होता है, ऐसा पूर्व

जन्म न माननेवाले हठवादी चार्वाक मानते हैं। अचिन्तित और अतर्वितकी अकस्मात् प्राप्ति हठ है। अभिव्यञ्जक उद्योगके द्वारसे अभीष्टकी सिद्धि दैव है। प्रतिग्रहादिवृत्ति अर्थात् कर्मसे फलोपलब्धि पौरुष है। पूर्वकर्मानुग्रह स्वभाव है। जिसके फलस्वरूप कौड़ी खोजते समय मणिकी प्राप्ति हो जाती है। प्रयत्न ही फलवान् होता है, ऐसा प्राकृत मानते हैं। हठ, दैव, स्वभाव और कर्मोंसे मनुष्य जिन –जिन वस्तुओंको प्राप्त करता है,वे सब ईश्वरकी पे्ररणासे प्राप्त करता है, ऐसा वैदिक मानते हैं (महाभारत – शान्तिपर्व ३२)–

एवं हठाच्च दैवाच्च स्वभावात् कर्मणस्तथा।

यानि प्राप्नोति पुरुषस्तत्फलं पूर्वकर्मणाम्।।

धातापि हि स्वकर्मैव तैस्तैर्हेतुभिरीश्वर:।

विदधाति विभज्येह फलं पूर्वकृतं नृणाम्।।

(महाभारत – वनपर्व ३२. २०,२१)

''इसप्रकार हठ, दैव, स्वभाव तथा कर्मसे मनुष्य जिन – जिन वस्तुओंको पाता है, वे सब उसके पूर्व कर्मोंके ही फल हैं।।''

''जगदाधार परमेश्वर भी उक्त हठादि हेतुओंसे जीवोंके पूर्वानुष्ठित कर्मोंको ही विभत करके तदनुरूप फलरूपसे यहाँ प्राप्त कराते हैं।।''

''कामितं काम:'' – ''अप्राप्तो विषय: प्राप्तिकारणाभावेऽपि, प्राप्यताम्, इत्याकारक चित्तवृत्तिविशेष: काम:'' (श्रीमधुसूदनीटीका, गीता ३) – ''प्राप्तिके कारणका अभाव होनेपर भी अप्राप्त विषयकी प्राप्ति हो, इस प्रकारकी चित्तवृत्तिविशेषका नाम काम है।।''

''सनातनो हि सङ्कल्प: काम इत्यबिधीयते'' (महाभारत –अनुशासनपर्व ८५.११), ''सङ्कल्पाभिरुचि: काम:'' (महाभारत –अनुशासनपर्व ८५.१६) – ''तपस्वियोंके सनातन सङ्कल्पका नाम काम तथा अभिरुचि है।''

एकसे अनेक और अनेकसे एक होनेकी प्रक्रियाका मूल काम है। यही सर्ग और प्रलयका सोपान है। यही जाग्रत् और सुषुप्तिका प्रस्थान है। अकेला व्यक्ति विचित्र घुटनका अनुभव करता है। वह रमणकी इच्छासे सहायक चुनता है। सहायकसापेक्ष आमोदसे श्रम, संकोच और भयकी दशामें पुन: एकान्त, विश्राम और निद्रा चाहता है। कालगर्भित निद्राके भङ्ग होनेपर पुन: जायादिके साथ आमोद और प्रमोदमें संलग्न होता है। इस प्रकार व्युत्थान, रमण और विश्रामका चक्र व्युत्थानरहित विश्रामरूप निर्वाणकी ओर प्राणीको उन्मुख करता है।

ध्यान रहे, कमनीयकी प्राप्तिसे कामनाकी निवृत्ति होती है। कामनाशून्य नि:सङ्कल्पदशामें शुद्ध और समाहित चित्तपर सुखरूप आत्माकी अभिव्यक्ति होती है। मोहवश व्यक्ति कामनाकी पूर्तिको सुखानुभूतिका कारण मानकर विषयान्तरकी या पूर्वानुभूत विषयकी कामना करने लगता है। तदर्थ प्रयासमें संलग्न रहता है। जब जीव अहम् सहित इदम् रूप द्वैत और द्वैतबीज अव्याकृत (अव्यक्त)का अतिक्रमणकर आत्मस्वरूप निर्बीज असङ्कल्पदशाको प्राप्त होता है, तब कृतार्थ होता है।

''धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि'' (श्रीमद्भगवद्गीता ७.११) की उक्तिसे प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने धर्मके अविरुद्ध कामका महत्त्व ख्यापित किया है। धर्मके अविरुद्ध और अनुकूल काम वलीबनाशक, वंशप्रस्थापक, भवरसप्रसाधक और भवरसाभिमतिनिवारक (विषयरसलम्पटताका अपनोदक) है। धर्मके अविरुद्ध और अनुकूल कामरस सेवनसे लौकिक और पालौकिक उत्कर्ष तथा कामारि – वंसारि – समाराधनमें अभिरुचि तथा रति सुलभ होती है। कामशास्त्र चिकित्साशास्त्रमें सन्निहित है। अत: कामकिङ्करतामें श्रीवात्स्यायनप्रोक्त कामशास्त्रका उपयोग और विनियोग कथमपि उचित नहीं है।

शुद्ध सुखद पृथ्वी (/अन्न) पानी, प्रकाश, पवन, आकाश; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय,गर्व, स्मरण; प्रिय (प्रियदर्शनसे सम्प्राप्त आह्लाद), मोद (प्रियसम्मिलनसे समुद्भूत आमोद), प्रमोद (प्रियसंसेवनकी पराकाष्ठासे समुद्भूत बाह्याभ्यन्तर समुल्लास) और अवधारण (प्रिय, मोद, प्रमोदगर्भित सत्त्वोत्कर्षसम्पन्न आह्लादपूर्णदशामें निद्राकी समुपलब्धि)के स्वानुरूप संयत (मर्यादित) सञ्चय और सेवनसे स्वास्थ्यके प्रतिबन्धक रोगकी निवृत्ति एवम् अभिमत स्वास्थ्यकी अभिव्यक्ति सम्भव है। कान्ताको कान्तसे तथा कान्तको कान्तासे कामकी उक्त अन्न – जलादि उन्नीस कलाकी समुपलब्धि होती है। 'उन्नीस कलाके स्वानुरूप संयत सञ्चय और सेवनसे' – यह कथन धर्म तथा अर्थ पुरुषार्थका ख्यापक है। कामशास्त्रका

अन्तर्भाव चिकित्साशास्त्रमें है। अत एव काम चिकित्सा है।

उक्त उन्नीस कलाओंका अधिष्ठान काम है और इनकी अभिव्यञ्जिका शक्ति रति है। कामसुखकी मधुर – स्मृतिरूपा रति कामके अनङ्ग होनेपर भी शेष रखती है और वह कामको पुन: उज्जीवित करनेमें समर्थ होती है।

काम तथा रतिकी इस मीमांसासे शिव – शक्तिके साहचर्यका सङ्केत शैवागमसिद्ध मोक्षपुरुषार्थका स्मारक है।

शब्दाभिव्यञ्जक श्रोत्र, स्पर्शाभिव्यञ्जक त्वव्, रूपाभिव्यञ्जक नेत्र, रसाभिव्यञ्जक रसन और गन्धाभिव्यञ्जक नासिकाके अभिव्यञ्जक

संस्थानोंमें स्पर्शाभिव्यञ्जक त्वव् की देहमें बाह्याभ्यन्तर व्याप्ति है। त्वव् वायव्य है। काममें त्वव्– संश्लेषकी प्रधानता है। अत: काम वायु प्रधान है।

मद्य, द्यूत, हिंसादि अनर्थकर विविध आर्थिकपरियोजनाओंके फलस्वरूप अर्थका पर्यवसान अनर्थमें परिलक्षित है । दरिद्रताके समस्त स्रोतोंको समृद्धिका स्रोत माननेके कारण इस महायान्त्रिक युगमें अर्थ नामक पुरुषार्थका विलोप सुनिश्चित तथा परिलक्षित है।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भ: काम: क्रोध: स्मयो मद:।

भेदो वैरमविश्वास: संस्पर्द्धा व्यसनानि च॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।

तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

(श्रीमद्भागवत ११. २३. १८,१९)

‘‘चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब – ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं; अत एव कल्याणकामी मनुष्यको चाहिए कि स्वार्थ एवं परमार्थके विरोधी अनर्थनामधारी अर्थको दूरसे ही त्याग दे। अभिप्राय यह है कि अर्थको पुरुषार्थ सिद्ध करनेकी भावनासे इन पन्द्रह अनर्थोंके चपेटसे अर्थको मुक्त रक्खे।।”

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमता।

कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण माहेश्वर –केदारखण्ड १२.३५)

‘‘बुद्धिमान् पुरुषको यह उचित है कि वह अपने न्यायपूर्वक उपार्जित धनका दसवाँ भाग ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये किसी सत्कर्ममें लगावे।।”

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।

पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(श्रीमद्भागवत ८.१९.३७)

“धर्म, यश, अर्थ, काम और स्वजनोंके लिये वित्तका पाँच प्रकारसे उपयोग तथा विनियोग करनेवाला लोक तथा परलोकमें प्रमुदित होता है।।”

दैवतेभ्य: पितृभ्यश्च संविभागोऽतिथिष्वपि।

असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २८७.१९)

“देवताओं, पितरों और अतिथियोंको उनका भाग देना तथा भरण – पोषण करनेयोग्य व्यक्तियोंका त्याग न करना – यह कल्याणका निश्चित साधन है।।”

नालसा : प्राप्नुवन्त्यर्थान् न वलीबा नाभिमानिन:।

न च लोकरवाद् भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिण:।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १४०.२३)

“आलसी, कायर, अभिमानी, लोकचर्चासे भयभीत और सदा समयकी प्रतीक्षा करनेवाले अर्थात् भाग्यके भरोसे रहनेवाले अपने अभीष्ट अर्थ (प्रयोजन) को नहीं प्राप्त कर सकते।।”

निर्धनताके आस्तिक – नास्तिक उभयसम्मत सात हेतु इस प्रकार हैं। –

1.
श्रमके प्रति अरुचि.

2.
सामग्रीके अर्जन, उपयोग और उपभोगकी न्यूनता अर्थात् साधनहीनता.

3.
मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, वाणिज्यशक्ति तथा श्रमशक्तिके अनर्गल दोहन और दुरुपयोगकी प्रथा.

4.
महायन्त्रोंके प्रचुर प्रयोगके कारण कुटीर तथा लघु उद्योंगोंकी हीनता.

5.
मादक द्रव्योंकी दासता तथा विलासिता.

6.
अहङ्कार, आलस्य, अनुदारता, असहिष्णुता, असामञ्जस्य, अनुभवहीनता, अदूरदर्शिता, देश – काल और परिस्थितिके विपरीत चर्या, वैर – विरोधकी पराकाष्ठा.

7.
शासनतन्त्रकी दिशाहीनता.

8.
निर्धनताके आस्तिकसम्मत अतिरिक्त दो हेतु इस प्रकार हैं। –

9.

धर्म तथा ईश्वरसे विमुखता.

आश्रितों तथा दीनोंकी उपेक्षाके कारण प्रारब्धकी प्रतिकूलता अर्थात् दैवकी दुर्बलता.

निर्धनतानिवारणके अचूक उपाय इस प्रकार हैं। –

1.

स्वस्थ जीवन तथा न्यायोचित जीविकोपार्जनके महत्त्वको हृदयङ्गम करते हुए श्रमके प्रति रुचि.

2.

सम्प्राप्त व्यक्ति और भूमि आदि सामग्रीके सदुपयोगका प्रशिक्षण.

3.

मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, वाणिज्यशक्ति तथा श्रमशक्तिके सदुपयोगकी दृष्टि.

4.

कुटीर तथा लघु उद्योंगका उपयोग.

5.

सात्त्विक आहार और संयमित जीवनका अभ्यास.

6.

कर्त्तव्यपरायणता, उदारता, परोत्कर्षसहिष्णुता, परस्पर सम्वाद, अलोलुपता और दूरदर्शिता, देश – काल तथा परिस्थितिके अनुरूप शुचिता तथा दक्षता, सबके प्रति आत्मीयता.

7.

सैद्धान्तिक सङ्घबलमें आस्था.

8.

सत्सङ्ग, सङ्कीर्त्तन तथा स्वाध्यायशीलतासे प्राप्त शक्ति – सम्पन्नताके कारण धर्म तथा ईश्वरमें आस्था.

शौचेन लभते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण तु।

वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया धनम्।।

(महाभारत – अनुशासनपर्व ६.१६)

“ब्राह्मण शुद्धाचारसे, क्षत्रिय पराक्रमसे, वैश्य उद्योगसे तथा शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवासे धन प्राप्त करता है।।”

नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीबं नापि निष्क्रियम् ।

नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् ।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.१७)

''जो दानशील नहीं है, उसे धन नहीं मिलता; न नपुंसकको,न आलसीको, न सर्वथा कर्मशून्यको, न शौर्यहीनको और न धैर्यविहीन - उद्योगहीन - दुर्व्यसनग्रस्त - असंयमी अतपस्वीको ही धन मिलता है।।''

न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवं

व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम्।

गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं

नयति पुरुषकार: सञ्चितस्तत्र तत्र।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४७)

''इस जीवजगत् में उद्योगहीन मनुष्य कभी फूलता - फलता दृष्टिगोचर नहीं होता। दैवमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह उसे कुमार्गसे हटाकर सन्मार्गमें लगा दे। जैसे शिष्य गुरुको आगे करके चलता है, वैसे ही दैव पौरुषको ही आगे करके चलता है। सञ्चित किया हुआ पुरुषार्थ ही दैवको जहाँ चाहता है, वहाँ ले जाता है।।''

यथा तैलक्षयाद् दीप: प्रहासमुपगच्छति।

तथा कर्मक्षयाद् दैवं प्रहासमुपगच्छति।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४४)

''जैसे तैल समाप्त हो जानेपर दीपक बुझ जाता है, वैसे ही पौरुषके क्षीण हो जाने पर दैव भी विलुप्त हो जाता है।।''

यथाग्नि: पवनोद्धूत: सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत्।

तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्द्धते।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४३)

''जैसे थोड़ी - सी भी आग वायुका सहारा पाकर बहुत प्रचण्ड हो जाती है, वैसे ही पुरुषार्थका सहारा पाकर दैवका बल विशेष बढ़ जाता है।।''

यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम् ।

तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.७)

''जैसे बीज खेतमें बोए बिना फल नहीं दे सकता; वैसे ही दैव (भाग्य, अदृष्ट, प्रारब्ध) पुरुषार्थके बिना सिद्ध नहीं हो सकता।।''

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम् ।

क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समिद्ध्याते।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.८)

''पुरुषार्थ खेत है तथा दैवको बीज बताया गया है । खेत तथा बीजके संयोगसे ही अन्न समुत्पन्न होता है।।"

कुले जन्म तथा वीर्यमारोग्यं रूपमेव च।

सौभाग्यमुपभोगश्च भवितव्येन लभ्यते।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २८.२३)

''उत्तम कुलमें जन्म, बल – पराक्रम, आरोग्य, रूप, सौभाग्य और उपभोग – सामग्री ये सब प्रारब्धके अनुसार ही प्राप्त होते हैं।।"

'यस्य यद् विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते '(महाभारत – महाप्रस्थानिक २.१७)– 'जिसके लिए जो विहित हे, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।'

अन्न, जल, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, मार्ग, उत्सव – त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाहादिकी यथायोग्य व्यवस्था सुलभ करनेके लिए कला, विद्या, विज्ञान, श्रम, सामञ्जस्य और धन अपेक्षित है। हितैषी, हितज्ञ विशेषज्ञोंसे परामर्श, परस्परके सहयोगसे प्राप्त सामग्री और परिश्रम (सामूहिक श्रमदान)से अस्सी प्रतिशत क्षेत्रीय समस्याओंका समाधान सम्भव है। तदर्थ प्रयत्न प्रारम्भ करनेपर सोलह प्रतिशत क्षेत्रीय समस्याओंका समाधान विधायक, जिलापालादिके सम्भावित सहयोगसे सम्भव है। शेष चार प्रतिशत स्थानीय समस्याओंका समाधान सांसदादिके सौजन्यसे सम्भव है।

सत्य, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, सर्वहितकी भावना, स्नेह, सहानुभूति, संयम, दया, दान, सेवा तथा शौचाचार लक्ष्मीकी स्थिर प्रतिष्ठा है। माता – पिता – देव – पितर – आचार्य – अतिथि – आर्त्त – आश्रित –सत्कार, समयोचित आचार, प्राप्त सामग्रीका सदुपयोग, प्राप्त विवेकका समादर, आलस्य – अहङ्कार – अनुदारता – दु:शीलताका त्याग तथा दुर्व्यसनविहीनता, ईश्वरप्रणिधान, यज्ञमय और योगमय जीवन लक्ष्मीकी स्थिर प्रतिष्ठा है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, सत्पुरुष, काल, स्वकर्म तथा दया, दान, संयम लक्ष्मीके धारक संस्थान हैं। इनके समादरसे श्रीसम्पन्नता सुनिश्चित है।

विविध सम्पत्तियोंका मूल सुमति है ''जहाँ सुमति तहँ संपति नाना'' (रामचरितमानस ५.३९.६)। सुमतिसम्पन्नके प्रति व्यक्ति तथा समाजकी आस्था सुनिश्चित है। आस्थास्पदके प्रति सम्पत्तिका समाकर्षण स्वाभाविक है। सुमति धर्माचरणका मूल है। धर्मशीलके प्रति सम्पत्तिका समाकर्षण और सुख – शान्तिका स्फुरण स्वाभाविक है –

''जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं।

जद्यपि ताहि कामना नाहीं।

तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाएँ

धर्मसील पहिं जाहिं सुभाएँ।।''

(रामचरितमानस १.२९३.२,३)

आत्माकारमनोवृत्तिरूपा मति श्री है। सर्वाश्रय सर्वाधिष्ठान सागरोपम परिपूर्ण आत्मनिष्ठको सर्वसम्पत्तिकी समुपलब्धि सुनिश्चित है, न कि अर्थाभिसक्त बहिर्मुखको –

''आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं –

समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।''

(श्रीमद्भगवद्गीता २.७०)

आप्तकाम परम निष्कामके समर्चकको भी भूतिकी समुपलब्धि सुनिश्चित है–

''यं यं लोवं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्व: कामयते यांश्च कामान्।

तं तं लोवं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकाम:।'' (मुण्डकोपनिषत् ३. १. १०)

सर्वात्मभावसम्पन्न विशुद्धान्त:करणके सङ्कल्प अमोघ होते हैं। उनके सङ्कल्पके प्रभावसे अभिमत वस्तुकी सिद्धि सुनिश्चित है –''क्रतुमय: पुरुष: ...स क्रतुं कुर्वीत'' (छान्दोग्योपनिषत् ३.१४.१)

''श्रीद:, श्रीश:, श्रीनिवास:, श्रीधर:, श्रीनिकेतन:, श्रिय:पति:, श्रीपरम:'' (अग्निपुराण २८४.६, ७); तद्वत् ''श्रीवत्सवक्षा:, श्रीवास:, श्रीपति:, श्रीमतां वर:।। श्रीद:, श्रीश:, श्रीनिवास:, श्रीनिधि:, श्रीविभावन:। श्रीधर:, श्रीकर:, श्रेय:, श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रय:।।'' (विष्णुसहस्रनाम ७७,७८) – इन भगवन्नामोंके जपसे श्रीकी समुपलब्धि सुनिश्चित है।

निम्नलिखित श्लोकोंके पाठसे श्रीकी समुपलब्धि सुनिश्चित है। – ''नमो देव्यै नम: शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नम: श्रियै।

नम: पुष्ट्यौ नमस्तुष्ट्यौ वृष्ट्यौ हृष्ट्यौ नमो नम:।।

विशोका दु:खनाशाय विशोका वरदास्तु मे।

विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये।।''

(मत्स्यपुराण ८१. १६,१७)

''हे देवि ! तुझे नमस्कार, हे शान्तिस्वरूपे तुझे नमस्कार, हे लक्ष्मिस्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे श्रीस्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे पुष्टिस्वरूपे! तुझे नमस्कार, हे तुष्टि स्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे वृष्टिस्वरूपे! तुझे नमस्कार, हे हृष्टिस्वरूपे ! तुझे नमस्कार।।''

''लक्ष्मीस्वरूपा विशोका मेरे दु:खोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे सम्पत्ति प्रदान करें, शोक – सन्तापसे अतीत देवि मुझे सर्व सिद्धियाँ प्रदान करें।।''

अभीष्टकी प्राप्तिके फलस्वरूप उसकी कामनाका निवारण अनुभवसिद्ध है। निर्मल, निश्चल, निष्काम चित्तरूपी दर्पणपर परप्रेमास्पद आनन्दरूप आत्माका निरावरण स्फुरण स्वाभाविक है। इस तथ्यके मर्मज्ञ भूख –

प्यास, शीत - उष्णादि द्वन्द्वोंका विलासिताविनिर्मुक्त विवेकपूर्ण समाधानतक जीवनको सीमित रखते हुए सुखरूप आत्मस्वरूपमें मनोनिवेशके ही पक्षधर होकर तदर्थ प्रयत्नशील होते हैं।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।

अधिवं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

(श्रीमद्भागवत ७.१४.८)

''जितने अन्नसे उदरपूर्त्ति हो जाय और जितने वस्त्रसे तन ढक जाय, शीत–उष्णका निवारण तथा शील–स्नेहादिकी रक्षा हो जाय, देव–पितृ–अतिथि –सेवादि कार्यका सम्पादन हो जाय, मनुष्यका अधिकार अपने लिये उतनी ही सम्पत्ति पर है। शेष धनपर अपना अधिकार माननेवाला परस्वत्वापहारी होनेके कारण स्तेन (चोर) है । वह दण्डाधिकारीके द्वारा दण्ड पाने योग्य है ।''

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।

धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।।

(महाभारत- उद्योगपर्व ३३.६०)

''दो प्रकारके व्यक्ति गलेमें दृढ पत्थर बाँध कर गम्भीर जलाशयमें डुबा देनेके योग्य हैं- एक वे जो धनी होने पर भी अपेक्षित और अधिकृत स्थलों पर दान न दें और दूसरे वे जो दरिद्र होकर भी तपस्वी न हों अर्थात् धैर्यसम्पन्न- उद्योगशील- दुर्व्यसनहीन और संयमी न हों।।"

असाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति।

आत्मानं सङ्क्रम कृत्वा कृच्छ्रधर्मविदेव सः।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १३२. ४)

''जो स्वयंको सेतु बनाकर असाधुस्वभाव दुष्टोंसे धन लेकर साधुस्वभाव सज्जनोंको देता है, वह आपद्धर्मका ज्ञाता है।।"

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।

अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व १५०.४९)

''धर्म, काम, सर्वार्थसाधक काल, अर्थसाधक वसु और वासुकि, अध्यात्मविद्याविशारद आचार्य अनन्त और कपिल- ये सात धरणीके धारक तत्त्व हैं ।।''

यो हि कालो व्यतिक्रामेत् पुरुषं कालकाङ्क्षिणम्।

दुर्लभः स पुनस्तेन कालः कर्मचिकीर्षुणा।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १०३.२१)

''समयकी प्रतीक्षा करनेवाले पुरुषके लिए जो युक्त अवसर आकर भी चला जाता है, वह अभीष्ट कार्य करनेकी इच्छावाले उस पुरुषके लिए फिर दुर्लभ हो जाता है।।''

परीक्ष्यकारी युक्तश्च स सम्यगुपपादयेत्।

देशकालावभिप्रेतौ ताभ्यां फलमवाप्नुयात्।।

(महाभारतशान्तिपर्व १३७.२४)

''जो पुरुष प्रामाणिक निरीक्षण – परीक्षण कर सतत संयत और सावधान रहनेवाला है, वह अभीष्ट देश और कालका सम्यक् उपयोग करनेमें समर्थ होता है और उनके सहयोगसे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।।"

एतौ धर्मार्थशास्त्रेषु मोक्षशास्त्रेषु चर्षिभि:।

प्रधानाविति निर्दिष्टौ कामे चाभिमतौ नृणाम्।।

(महाभारत-शान्तिपर्व १३७.२३)

''ऋषियोंने धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा मोक्षशास्त्रमें इन देश और कालको कार्यसिद्धिका प्रधान उपाय बताया है। मनुष्योंकी कामनासिद्धिमें भी ये देश और काल ही प्रधान माने गये हैं।।"

काष्ठा: कला मुहूर्ताश्च दिवा रात्रिस्तथा लवा:।

मासा: पक्षा: षड् ऋतव: कल्प: संवत्सरास्तथा।।

पृथिवी देश इत्युक्त: काल: स च न दृश्यते।

अभिप्रेतार्थसिद्ध्यार्थं ध्यायते यच्च तत्तथा।।

(महाभारतशान्तिपर्व १३७.२१,२२)

''काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात, लव, मास, पक्ष, छह ऋतु, सम्वत्सर और कल्प – इन्हें काल कहते हैं तथा पृथ्वीको देश कहा जाता है। इनमें देशका तो दर्शन होता है, परन्तु काल दृष्टिगोचर नहीं होता। अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिए जिस देश और कालको उपयोगी मानकर उसका विचार किया जाता है, उसको ठीक – ठीक ग्रहण करना चाहिये।।"

भूतचतुष्टयके सूक्ष्मतम अविभाज्य और असंसृष्ट विभागका नाम परमाणु है। परमाणुको भोगने अर्थात् उसे पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, वह 'परमाणुकाल' है। दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है। तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु ' होता है। तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। उससे सौगुना काल 'वेध' कहलाता है। तीन वेधका एक 'लव' होता है। तीन लवका एक 'निमेष' होता है। तीन निमेषका एक 'क्षण' होता है। पाँच क्षणोंकी एक 'काष्ठा' होती है। पन्द्रह काष्ठाका एक 'लघु ' होता है। पन्द्रह लघुकी एक 'नाडिका' (दण्ड) होती है। दो नाडिकाओंका एक 'मुहूर्त ' होता है। दिन एवं रात्रिकी दोनों सन्धियोंके दो मुहूर्तोंको छोड़कर छ: या सात नाडिकाका एक 'प्रहर' या 'याम ' होता है। यह मनुष्यके दिन या रात्रिका चतुर्थ भाग होता है। चार– चार प्रहरके मनुष्यके 'दिन ' और 'रात ' होते हैं। पन्द्रह दिन और रातका एक 'पक्ष ' होता है, जो शुक्ल तथा कृष्णभेदसे दो प्रकारका माना गया है। इन दोनों पक्षोंको मिलाकर एक 'मास' होता है। दो मासकी एक 'ऋतु ' होती है तथा छ: मासका एक 'अयन ' होता है। अयन दक्षिणायन और उत्तरायण भेदसे दो प्रकारका माना गया है। दो अयन मिलकर मनुष्योंका एक 'वर्ष'

होता है। (श्रीमद्भागवत ३.११)।

आत्मा, देश, काल, उपाय, कृत्य तथा सहाय – नामक षड्वर्ग नीतिद्वारा सञ्चालित होनेपर उन्नतिके कारण होते हैं। अभिप्राय यह है कि देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्त:करण तथा वासनाबीज अज्ञान–समवेत आत्मा, प्राची आदि दिव्, काशी आदि क्षेत्ररूप देश, भूत – भविष्यत् – वर्तमान तथा प्रात: – मध्याह्न – सायम् आदि काल, कार्यसाधक प्रकाररूप उपाय, देश – काल – पात्रानुरूप कार्यविशेषरूप कृत्य एवम् द्रव्य, आचार्य, मन्त्री, पत्नी, परिकरादि सहायकका उपयोग, प्रयोग, विनियोग कर्मसिद्धिके षड्वर्ग हैं। –

''आत्मा देशश्च कालश्चाप्युपाया: कृत्यमेव च।

सहाया: कारणं चैव षड्वर्गो नीतिज: स्मृत:।।''

(महाभारत – शान्तिपर्व ५९.३२)

यह विश्व एक विश्वविद्यालय है। इसमें स्थावर – जङ्गम विविध प्राणियोंके सहित पृथिव्यादि विविध पदार्थ अपने – अपने स्वभावके अनुसार व्यवहाररत गुरुकल्प हैं। ये श्रीदक्षिणामूर्त्तिकी शैलीमें विधि तथा निषेधमुखसे मौन व्याख्यान देते हैं। अवधूतशिरोमणि दत्तात्रेयके सदृश लोकतत्त्वविचक्षण प्रबुद्ध शिष्य बिना प्रश्न किये ही अधिभूत, अध्यात्म तथा अधिदैवसहित आत्मा और परमात्मासे स्ववर्णाश्रमोचित धृति, क्षमा, परहित, संयतजीवनके लिए अपेक्षित संयत आहार, असङ्गता, विभुता, शुद्धता, स्निग्धता, मधुरभाषिता, लोकपावनता, तेजस्विता, देदीप्यमानता, अपराभूतता, समता, निर्दोषता, एकरसता, एकरूपता, च्युतिविहीनता, अविक्रिय विज्ञानघनता, प्रसन्नता, अनन्तपारगम्भीरता, प्रशान्तता, नि:स्पृहता, सारार्थग्राहकता, कामादिकी अकिङ्करता, परिग्रहविहीनता, रसनेन्द्रिय – जननेन्द्रियनिग्रहशीलता, विषयाभिलाषविहीनता, अकिञ्चनता, नूतनबालवत् विमुग्धता, त्रिगुणपारङ्गतता, एकान्तशीलता, एकाग्रता, देहेन्द्रियप्राणान्त:करणकी एकार्थसंलग्नता, चलाचलनिकेतता, तन्मयता, नि:श्रेयसपरायणता और अद्वयब्रह्मात्मरूपताकी शिक्षा लेकर भक्ति – विरक्ति – भगवत्प्रबोधसमन्वित विमल विवेकसम्पन्न गुणसागरनागर तथा गुणमयभावोंसे अतिक्रान्त हो जाते हैं।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।

सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्।।

(मनुस्मृति २.१००)

''इन्द्रियोंके समूहको तथा मनोरूप अन्त:करणको उचित उपायसे वशमें करके शरीरको क्षीण न करता हुआ पुरुष सम्पूर्ण पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेमें समर्थ होता है।।"

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।

न हि धर्मादपैत्यर्थ: स्वर्गलोकादिवामृतम्।।

(महाभारत – उद्योगपर्व ३७. ४८)

''जो अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे आरम्भसे धर्मका ही

आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं होता; वैसे ही धर्मसे अर्थ पृथक् नहीं होता।।"

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।

धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।।

(कूर्मपुराणपूर्व. २.४५)

''धर्मसे अर्थ सुलभ होता है, धर्मसे काम समुत्पन्न होता है, धर्म स्वयं धर्म है हीं; अपवर्गरूप मोक्षका अभिव्यञ्जक भी धर्म ही है।।''

धर्मादर्थ: प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।

धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।।

(वाल्मीकीय रामायण - अरण्यकाण्ड ९.३०)

''धर्मसे अर्थ समुपलब्ध होता है तथा धर्मसे सुख समुपलब्ध होता है । धर्मसे सब सुलभ होता है। यह जगत् धर्मसार है, अभिप्राय यह है कि सर्व ऋद्धि - सिद्धियोंका उद्गमस्थान धर्म है।।"

स्वस्थ, शान्त तथा सुखमय जीवनकी समुपलब्धिकी भावनासे सञ्चित विषयोपभोगकी सामग्री अर्थ है। विषयोपभोगसे सुलभ स्वस्थ, शान्त तथा सुखमय जीवनकी समुपलब्धि काम है। अर्थसे कामकी सिद्धि सनातन सिद्धान्त है - ''अर्थात्कामोऽभिजायते" (गरुडपुराण १.४९.२०)

अर्थोपार्जन और विषयोपभोगकी और उनसे अनासक्तिकी और आत्मानुसन्धानकी सनातनविधा धर्म है। अनात्मवस्तुओंसे विविक्त सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका निरावरण स्फुरण मोक्ष है।

न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

(महाभारत - आदिपर्व ७५.५०)

''विषयोपभोगकी इच्छा विषयोपभोगसे कभी शान्त नहीं हो सकती। घृतकी आहुति डालनेसे अधिक प्रज्वलित होनेवाली आगकी भाँति वह पूर्वापेक्षा अधिक उद्दीप्त होती जाती है।।''

पृथिवी रत्नसम्पूर्णा हिरण्यं पशव: स्त्रिय:।

नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्।।

(महाभारत - आदिपर्व ७५.५१)

''रत्नोंसे भरपूर सारी पृथ्वी, सम्पूर्ण सुवर्ण, अभिमत पशु और स्त्रियाँ किसी एक पुरुषको मिल जाँय, तब भी उस एक विषयलोलुपके लिए वे सब पर्याप्त सिद्ध नहीं होंगे। ऐसा समझकर श्रेयोजिज्ञासु विवेक - विज्ञानके बलपर विषयलम्पटताके कारण असंयत और अमर्यादित विषयसञ्चय तथा उसके उपभोगसे उपराम होवे।।''

धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते

बलेन किं येन रिपुं न बाधते।

श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्

किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३२१.९३)

''उस धनसे क्या लाभ जिसे मनुष्य न तो किसीको दे सकता और न अपने उपभोगमें ही ला सकता है? उस बलसे क्या लाभ, जिससे शत्रुओंको बाधित न किया जा सके? उस शास्त्रज्ञानसे क्या लाभ, जिसके द्वारा मनुष्य धर्माचरण न कर सके? तद्वत् उस जीवात्मस्वरूप स्वयंसे भी क्या लाभ, जो न जितेन्द्रिय है और न मनको ही वशमें रख सकता है?''

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।

प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च॥

(महाभारत - शान्तिपर्व २३५.२४)

''जो वेदोक्त संस्कारोंसे सम्पन्न है तथा नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका है, उस विज्ञ पुरुषको इहलोक और परलोकमें कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती॥''

ये च बुद्धिसुखं प्राप्ता द्वन्द्वातीता विमत्सराः।

तान् नैवार्था न चानर्था व्यथयन्ति कदाचन॥

(महाभारत - शान्तिपर्व १७४.३५)

''जो विवेकविज्ञानजन्य सुखको प्राप्त हैं, द्वन्द्वोंसे अतीत तथा मत्सरतासे विमुक्त हैं, उन्हें अभीष्टकी सिद्धिरूप अर्थ और असिद्धिरूप अनर्थ कभी व्यथित नहीं करते॥''

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

(महाभारत - शान्तिपर्व १७४.५५)

''दुर्मति मनुष्योंके लिये जिसका त्याग दुर्गम है, जो देहके जीर्ण हो जानेपर भी स्वयं कभी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणोंके साथ जानेवाला रोग बनकर रहती है, उस तृष्णाको जो त्याग देता है, उसीको सुख मिलता है॥''

यस्य वाङ्मनसी स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा।

तपस्त्यागश्च सत्यं च स वै सर्वमवाप्नुयात्॥

(महाभारत - शान्तिपर्व १७५.३४)

''जिसकी वाणी और मति सदा सम्यक् समाहित रहती हैं तथा जो त्याग, तप और सत्यसे सम्पन्न रहता है, वह निःसन्देह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ''

विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।

यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमतिवर्तते॥

(चरकसंहितासूत्र ९.२१)

‘‘विद्या (अपने विषयका ज्ञान), वितर्व (विचारमन्थन), विज्ञान (प्रयोगविधिकी जानकारी), स्मृति, तत्परता और क्रिया – ये छह गुण जिस साधकमें होते हैं, वह साध्यकी सिद्धिमें सफल होता है।।’’

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।

आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ३३०.३०)

‘‘जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे सुदूर है और अपने ही सहारे विचरण करता है, वह सुखी होता है।। ’’

देवराज इन्द्रके प्रति देवगुरु बृहस्पतिद्वारा उपदिष्ट सर्वप्रिययशस्करी संहिता इस प्रकार है। –

सान्त्वमेकपदं शक्र पुरुषः सम्यगाचरन्।

प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ८४.३)

‘‘इन्द्र! जिसका नाम एक ही पदका है, वह एकमात्र वस्तु है, सान्त्वना अर्थात् सहानुभूति। उसका भलीभाँति आचरण करनेवाला पुरुष समस्त प्राणियोंका प्रिय होकर महान् यश प्राप्त कर लेता है।।’’

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।

स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ८४.६)

‘‘जो सबको देखकर पहले ही बात करता है और सबसे मुसकराकर ही बोलता है, उस पर सब प्रसन्न होते हैं।।’’

दानमेव हि सर्वत्र सान्त्वेनानभिजल्पितम्।

न प्रीणयति भूतानि निर्व्यञ्जनमिवाशनम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ८४.७)

‘‘जिस प्रकार बिना व्यञ्जनका भोजन मनुष्यको सन्तुष्ट नहीं करता, उसी प्रकार सान्त्वनाहीन दान भी मनुष्यको सन्तुष्ट नहीं कर पाता।।’’

सुकृतस्य हि सान्त्वस्य श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च।

सम्यगासेव्यमानस्य तुल्यं जातु न विद्यते।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ८४.१०)

‘‘यदि अच्छी तरहसे सान्त्वनापूर्ण, स्नेहयुक्त तथा मधुर वचन बोला जाय और सदा सब प्रकारसे उसीका सेवन किया जाय तो उसके समान वशीकरणका साधन इस जगत् में निःसन्देह दूसरा कोई नहीं है।।’’

महर्षि गालवके प्रति देवर्षि नारदद्वारा उपदिष्ट सर्वशास्त्रतात्पर्य्यस्वरूप सर्वश्रेयस्करी संहिता इस प्रकार

है। –

अनुग्रहं च मित्राणाममित्राणां च निग्रहम्।

सङ्ग्रहं च त्रिवर्गस्य श्रेय आहुर्मनीषिणः।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७. १६)

''मित्रोंपर अनुग्रह करना, शत्रुभाव रखनेवाले दुष्टोंको दण्ड देना तथा धर्म, अर्थ और कामका सङ्ग्रह करना – इसे मनीषी पुरुष श्रेय कहते हैं।।''

निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।

सद्भिश्च समुदाचारः श्रेय एतदसंशयम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७. १७)

''पापकर्मसे दूर रहना, निरन्तर पुण्यकर्मोंमें लगे रहना तथा सत्पुरुषोंके साथ रहकर सदाचारका ठीक – ठीक पालन करना – यह संशयरहित श्रेयका मार्ग है।।''

मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।

वाव् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७. १८)

''सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका वर्ताव करना, व्यवहारमें सरल होना तथा मीठे वचन बोलना यह संशयरहित श्रेयका मार्ग है।।''

दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च सम्विभागोऽतिथिष्वपि।

असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७. १९)

''देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंको उनका भाग देना और भरण – पोषण करने योग्य व्यक्तियोंका त्याग न करना – यह संशयरहित श्रेयका मार्ग है।।''

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।

यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७. २०)

''सत्य बोलना श्रेयस्कर है, परन्तु सत्यको यथार्थरूपसे जानना दुष्कर है। मैं तो उसीको सत्य कहता हूँ, जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो।।''

अहङ्कारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः।

सन्तोषश्चैकचर्या च कूटस्थं श्रेय उच्यते।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २८७.२१)

''अहङ्कारका त्याग, प्रमादका निग्रह, सन्तोष और एकान्तवास – यह असन्दिग्ध श्रेय है।।'' ध्यान रहे;

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि

तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि।।

प्रमादाद् वै असुराः पराभव-

न्नप्रमादाद् ब्रह्मभूताः सुराश्च।।

(महाभारत – उद्योगपर्व ४२. ४,५)

''मुझ सनत्सुजातका कथन है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है।।"

''प्रमादके कारण ही असुरगण मृत्युसे पराजित हुए और अप्रमादसे ही देवगण ब्रह्मस्वरूप हुए।।"

प्रसङ्गानुसार अविद्या तथा कामप्रभव प्रवृत्ति या निवत्ति; तद्वत् असावधानता (अमनस्कता) या विषयासक्ति प्रमाद है।

प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्त्तव्यः कदाचन।

प्रमादो मृत्युरित्याहुर्विद्यायां ब्रह्मवादिनः।।

(अध्यात्मोपनिषत् १४)

''ब्रह्मनिष्ठामें प्रमाद कभी नहीं करना चाहिए। ब्रह्मविद्याकी समुपलब्धिमें प्रमाद मृत्यु है, ऐसा ब्रह्मवादियोंने कहा है।।"

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्।

भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे।।

(महाभारत – शान्तिपर्व २७.३१)

''आलस्य सुखरूप प्रतीत होता है, परन्तु उसका अन्त दुःख है तथा कर्त्तव्यपरायणतारूपा दक्षता दुःखरूप प्रतीत होती है; परन्तु उससे सुखका उदय होता है, साथ ही ऐश्वर्य, लक्ष्मी, लज्जा, धृति और कीर्ति – ये कार्यदक्ष पुरुषमें ही निवास करती हैं, न कि आलसीमें।।"

इस सन्दर्भमें धर्मराज युधिष्ठिरका खेदपूर्ण उद्गार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है –

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चित्

वधो नराणामिह जीवलोके।

प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्

त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति।।

(महाभारत – सौप्तिकवध १०.१९)

''मनुष्योंके लिए प्रमादसे बढ़कर इस संसारमें दूसरी कोई मृत्यु नहीं है। प्रमत्त मनुष्यको सम्पूर्ण अर्थ सब ओरसे त्याग देते हैं और अनर्थ बिना बुलाये ही उसके समीप आ जाते हैं ।।"

न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं

विद्या तप: श्रीर्विपुलं यशो वा।

पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून्

सर्वान् महेन्द्रं सुखमेधमानम्।।

(महाभारत - सौप्तिकवध १०.२२)

''प्रमादी मनुष्य कभी विद्या, तप, वैभव अथवा महान् यश नहीं प्राप्त कर सकता। देखो देवराज इन्द्र प्रमाद त्याग देनेके कारण ही अपने सब शत्रुओंका संहार करके सुखपूर्वक उन्नति प्राप्त कर रहे हैं।।"

६. विकास - परियोजना

श्रुतिसम्मत नीति तथा अध्यात्मसमन्वित परम्पराप्राप्त व्यासपीठसे प्रेरित तथा नियन्त्रित शासनतन्त्र, शासनतन्त्रके द्वारा संयमित वाणिज्यतन्त्र और सेवातन्त्र सर्वसुखप्रद है; जबकि सेवकतन्त्रके अधीन वाणिज्यतन्त्र, वाणिज्यतन्त्रके अधीन शासनतन्त्र तथा शासनतन्त्रके अधीन धर्म और मोक्षके संस्थान आचार्यतन्त्रके कारण विप्लवपूर्ण वातावरण और विश्वयुद्धकी विभीषिका सुनिश्चित है। अत: वर्णव्यवस्थाके व्यत्यास (उलटफेर) के फलस्वरूप सम्प्राप्त तथा सम्भावित विप्लवको निरस्त करनेकी नितान्त आवश्यकता है।

स्वतन्त्रतासंग्रामके चरम चरणमें धर्मद्रोही शासनकी दुरभिसन्धिके फलस्वरूप आर्यभूमि भारतमें किन्हीं अपवव राजनेताको ही धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रमें हस्तक्षेपका दायित्व दिया गया। स्वतन्त्रभारतमें अबतक उनके प्रति आस्थान्वित और उनके अनुगत व्यक्तिको ही सांस्कृतिक, सामाजिक, प्रशासनिक तथा राजनैतिक धरातलपर धर्मगुरुके रूपमें ख्यापित किया। देशविभाजक धर्मद्रोही वर्गका ही स्वतन्त्र भारतमें छल - बल - डण्केकी चोटसे व्यासपीठ तथा शासनतन्त्रपर वर्चस्व परिलक्षित है। गाँधीजी, विनोबाजी, दलाईलामाजी, जयप्रकाशजी तथा अन्नाजी आदिकी परियोजनाओंकी विफलता तथा विस्फोटकताका रहस्य सनातनसिद्धान्तसे सुदूरता है। आर्यसमाजकी व्यापकता तथापि विफलताका रहस्य असैद्धान्तिक उदारता तथा सनातनवर्णाश्रमव्यवस्थामें अनास्था है।

लोकतान्त्रिक युगमें स्वस्थक्रान्तिके स्वरूपको स्वस्थचित्तसे समझनेकी और क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है।

१८३९ ईस्वी तक गान्धार - अफगानिस्तानमें महाराजा रणजीतसिंहका शासन था। तत्पश्चात् अङ्ग्रेजोंने वहाँ शासन किया। १९०४ ईस्वीमें उन्होंने हबीबुल्लाह नामक अमीरको वहाँके शासकके रूपमें आंशिक स्वतन्त्ररूपसे राज्य चलानेकी अनुमति दी। कारण यह था कि उसने यह शर्त मान ली कि अन्ताराष्ट्रिय (अन्तर्राष्टीय)और वैदेशिक मामलोंमें वह अङ्ग्रेजोंके अधीन रहेगा। सन् १९१९में उसके अधिकार फिर छीन लिये गये। सन् १९४७ में अफगानिस्तानको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई । अङ्ग्रेजोंने भारतके भूभागको सन् १९११ में श्रीलेङ्का, सन् १९३५में वर्मा (म्यामार) और सन् १९४७ में दो भागोंमें पाकिस्तान (पाकिस्तान तथा बङ्गलादेश) नामसे पृथव् किया।

सन् १९५०में चीनने तिब्बतको हड़प लिया।

सन् १९५४ में भारतसरकारने पश्चिम बङ्गालका बेरूबाड़ी क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान (बङ्गलादेश) को सौंपा।

सन् १९५८में चीनने भारतके सीमावर्ती क्षेत्रपर अधिकार जमा लिया।

सन् १९६२ में चीनने भारतकी बासठ हजार वर्गमीलभूमिपर अधिकार जमा लिया।

सन् १९६३ में भारतसरकारने अण्डमान नामक द्वीपसमूहका सर्व नामक द्वीप वर्माको सौंपा।

सन् १९७२ में भारतसरकारने कच्चातीबू द्वीप श्रीलङ्काको सौंपकर देशको विखण्डित किया।

सन् १९८२ – ८३ में चीनने भारतके अरुणाचलक्षेत्रके भूभागको हड़प लिया।

सन् १९९२ में भारतके शासनतन्त्रने तीन बीघाभूभाग बङ्गलादेशको सौंपकर भारतको विखण्डित किया।

देशके सीमावर्ती क्षेत्रके विभाजनका क्रम निरन्तर क्रियान्वित है। अमरीका, ब्रिटेन, रूस, चीन, पाकिस्तान तथा बङ्गलादेशकी कूटनीतिके चङ्गुलके चपेटसे भारतको उबारनेवाला कोई शासक अबतक प्राप्त नहीं है। सङ्कीर्त्तन, बौद्धिज्म आदिके अतिरेकने क्षात्रधर्मको विलुप्तकर कम्युनिज्म आदि घातक तन्त्रोंको पनपनेका पूर्ण अवसर दिया है।

भारत अपनी मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, कृषि – गोरक्ष्य – वाणिज्यशक्ति तथा श्रमशक्तिका सदुपयोग करनेमें पूर्ण असमर्थ है।

स्वतन्त्रताके नामपर अहिंसाके गर्भसे घोर हिंसा, पकिस्तानसे भारतमें आये हुए वर्गकी विषमपरिस्थितिके गर्भसे वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करता सुलभ हुई। संविधानके नामपर वेदसम्मत आचार – विचारविहीनता प्राप्त हुई। लोकतन्त्रके नामपर आलोक और उत्कर्षविहीन लोकसंरचना सुलभ हुई। वैज्ञानिकचेतना और विकासके नामपर शिक्षा, रक्षा, जीविका, न्याय, कृषि – गोरक्ष्य – वाणिज्य और सेवादि सर्वप्रकल्पोंमें आदर्शविहीनता, उत्कर्षविहीनता और परतन्त्रता प्राप्त है।

स्वतन्त्रभारतमें सत्तालोलुपता तथा अदूरदर्शिताके कारण दिशाहीन प्रधानमन्त्रियोंद्वारा विभाजनका कुचक्र क्रियान्वित है।

केवल धन, मान तथा विषयोपभोगके लिए ही विद्या और कलाका उपयोग करनेवाले व्यक्ति तथा संस्थान धर्मके अवरोधक और धर्मद्रोही अवश्य हैं।–

आजिजीविषवो विद्यां यश:कामौ समन्तत:।

ते सर्वे नृप पापिष्ठा धर्मस्य परिपन्थिन:।।

(महाभारत-शान्तिपर्व १४२.१२)

“हे राजन्! जो जीविकाकी इच्छासे विद्याका उपार्जन करते हैं, सर्वत्र उसी विद्याके बलसे यश और मनोवाञ्छित पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे सब पापनिष्ठ और धर्मद्रोही हैं।।”

विकासके नाम पर महानगरोंकी संरचना यान्त्रिकयुगकी देन है। जिसके फलस्वरूप गाँव, वन और खनिज पदार्थोंका तद्वत् संयुक्त परिवारका विलोप हो रहा है । संयुक्त परिवारके विलोपके कारण सनातन कुलधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलगुरु, कुलवधू, कुलपुरुष आदिका विलोप सुनिश्चित और परिलक्षित है ।

शुद्ध मिट्टी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश; तद्वत् शुद्ध शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शुद्ध मनोभावका विलोप महानगरोंमें परिलक्षित है। जिसके फलस्वरूप दूषित पर्यावरण, घृणित एवं गर्हित जीवन मानवताके लिए अभिशाप सिद्ध हो रहा है । विकासकी विश्वस्तरपर उक्त अवधारणको क्रियान्वित करनेके कारण मनुष्य भोजन करने और सन्तान उत्पन्न करनेका विचित्र यन्त्र होने लगा है । यान्त्रिकयुगमें विकासके नाम पर परमात्मा, उनकी शवित प्रकृति, प्रकृतिके परिकर आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी नामक पञ्चभूत तथा पुण्य और पुण्यात्मा पुरुषसे सुदूर रहना अनिवार्य है । प्रामाणिक रीतिसे विचार करनेपर यह विकासके नाम पर विनाशको आमन्त्रित करना है ।

विकासके नामपर गोवंश, गङ्गादि तथा सती, विप्रादि दिव्य वस्तुओं और व्यक्तियोंको विकृत, दूषित, क्षुब्ध तथा विलुप्त करनेका प्रकल्प अवश्य ही विघातक है।

यान्त्रिकयुगमें प्रवृत्तिके गर्भसे प्रवृत्ति निकल आना स्वाभाविक है । परन्तु गन्ताकी जिस गतिके गर्भसे गति ही निकलती जाय, गन्तव्यतक जिस गतिकी गति ही न हो, उस गतिकी दुर्गति ही मानी जाती है । अत: 'निवृत्तिस्तु महाफला' (मनुस्मृति ५.५६), 'निवृत्तिमापन्नश्चरेत् सर्वाङ्गनिर्वृत:' (महाभारत - शान्तिपर्व ३३९. ६७), 'यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थत:। मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृति:।। ' (श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०.१२)के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि प्रवृत्तकी सार्थकता निवृत्तिमें है और निवृत्तिकी सार्थकता निर्वृति अर्थात् जन्म और मरणकी अनादि - अजस्रपरम्पराके आत्यन्तिक उच्छेदमें सन्निहित है ।

यान्त्रिकयुगमें जीवनकी मूलभूत चाह और उसकी पूर्तिके वास्तविक उपायका ज्ञान और ध्यान नहीं है । अत: जीवनको सार्थक करनेका कोई स्वस्थ अभियान भी नहीं है । वस्तुस्थिति यह है कि मृत्युके चपेटसे विमुवत अखण्ड मृत्युञ्जयपद, मोह - मूर्खताके चपेटसे विमुवत अखण्ड विज्ञान और दु:खके चपेटसे विमुवत अखण्ड आनन्दकी समुपलब्धि प्राणियोंकी इच्छाके वास्तव विषय हैं । अभिप्राय यह है कि जीवकी चाहका मौलिक विषय जीवका वास्तव स्वरूप ही है । शरीरसहित बाह्य जगत् प्रमाणिक रीतिसे निरीक्षण तथा परीक्षण करनेपर अनित्य (असत्य), जड और दु:खरूप सिद्ध है । उसमें अज्ञानसुलभ अहंता - ममताके कारण ही जीवको मृत्यु, मूर्खता और दु:खका भय प्राप्त है । सुषुप्तिमें अनित्य, अचित् - दु:खप्रद शरीरादिको लेकर अहंता - ममताका उदय न होनेके कारण अर्थात् अहंता - ममताका आश्रय अन्त:करणका अविद्यामें विलय होनेके कारण जीवको शीत - उष्ण, भूख - प्यास आदि द्वन्द्वोंकी तद्वत् मृत्यु, मोह और दु:खकी प्राप्ति और व्याप्ति न होनेपर भी मृत्यु, मोह और दु:ख - बीज अज्ञान शेष रहता है। जिसप्रकार बबूलके चिकने बीजमें पत्र, पुष्प,तीक्ष्ण काँटे आदिका यद्यपि दर्शन नहीं होता; तथापि उस बीजको पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश और दिव् तथा कालका अनुकूल संसर्ग सुलभ होनेपर पत्र, पुष्प, तीक्ष्ण कण्टकादिकी अभिव्यक्ति सुनिश्चित है; उसी प्रकार सुषुप्ति, प्रलयादिमें शीत - उष्ण, भूख - प्यास आदि द्वन्द्व तद्वत् मृत्यु, मोह और दु:ख - बीज अज्ञानमें यद्यपि इनका अनुभव नहीं होता; तथापि उस बीजको जागरादि व्युत्थानदशामें देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्त:करण तद्वत् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और इनके अभिव्यञ्जक संस्थान स्रव्, चन्दन, वनिता, शत्रु, मित्रादिका अनुकूल संसर्ग सुलभ होनेपर शीत - उष्ण, भूख - प्यास आदि द्वन्द्व तद्वत् मृत्यु, मोह और दु:खकी अभिव्यक्ति सुनिश्चित है। अत एव असच्चिदानन्दरूप अनात्म वस्तुओंसे विविक्त

सच्चिदानन्दरूप आत्माका अनुसन्धान और आत्मानुरूप आत्माका परिज्ञान ही शीत – उष्ण, भूख – प्यास आदि द्वन्द्व तद्वत् मृत्यु – मूर्खता – दु:ख – बीज अज्ञानके आत्यन्तिक उच्छेदका एकमात्र उपाय है।

इस महायान्त्रिक युगमें ज्ञातज्ञातव्यता, प्राप्तप्राप्तव्यता तथा कृतकर्त्तव्यता सर्वथा असम्भव है। अभिप्राय यह है कि जिस एकके ज्ञानसे सबका ज्ञान, जिस एककी समुपलब्धिसे सबकी समुपलब्धि तथा जिस एकके क्रियान्वयनसे सबका क्रियान्वयन सम्भव है; उसका अपरिज्ञान भौतिक युगका अभियान है। जबकि 'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते '(श्रीमद्भगवद्गीता ७.२),''कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" (मुण्डकोपनिषत् १.१.३), ''तस्मिन् सुविदिते सर्वं विज्ञातं स्यात्" (रुद्रहृदयोपनिषत् २७), 'न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय:'(श्रीमद्भगवद्गीता ३.), 'तस्य कार्यं न विद्यते' (श्रीमद्भगवद्गीता ३. १८),'एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्य: ' (श्रीमद्भगवद्गीता १५.२०) –'जो जानना था, जान लिया; जो पाना था, पा लिया; जो करना था, कर लिया। मेरा कुछ भी ज्ञातव्य, प्राप्तव्य और कर्त्तव्य शेष नहीं है।' इस तथ्यकी अनुभूति अध्यात्मविद्याको आत्मसात् करनेपर ही सम्भव है।

यान्त्रिक युगमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहको – शनै: – शनै: जीवनमें पूर्णत: प्रतिष्ठित करनेकी भावनासे शास्त्रसम्मत परम्परा प्राप्त वर्णाश्रमव्यवस्थाको कहीं स्थान प्राप्त नहीं है । जिसके फलस्वरूप अहिंसाके गर्भसे घोर हिंसा, सत्यके गर्भसे मिथ्याभाषण, अस्तेयके गर्भसे चौर्य और ब्रह्मचर्यके गर्भसे व्यभिचार और अपरिग्रहके गर्भसे घोर परिग्रहका उदय स्वाभाविक है । सनातन वर्णाश्रम व्यवस्थामें अनास्थाके कारण वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करता सुनिश्चित है। जिसके फलस्वरूप शिक्षा, रक्षा, अर्थ और सेवाका असन्तुलित होना स्वाभाविक है ।

यान्त्रिकयुगमें सर्दी – गर्मी, भूख – प्यास आदि द्वन्द्वोंके प्रतिघात करनेमें ही जीवनका उपयोग और विनियोग होनेके कारण द्वन्द्वातीत होनेके मार्गका सर्वथा अवरुद्ध होना स्वाभाविक है । परन्तु द्वन्द्वोंसे युद्ध कर उन पर विजय प्राप्त करनेकी भावना ठीक उसी प्रकारकी विडम्बना है; जिस प्रकार अपनी छायासे युद्ध कर उसपर विजय प्राप्त करना।

यान्त्रिकयुगमें कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादि प्रकल्पोंकी पूर्त्ति देहात्मवादके आधारपर होनेके कारण सुख – शान्तिकी समुपलब्धि सर्वथा असम्भव है।

यदि चेतनाविशिष्ट शरीर ही आत्मा है और अभीष्ट विषयेन्द्रिय संयोगसुलभ आनन्द ही आनन्द है, तब इसे भुलाकर सोनेकी भावना ही असम्भव है। चेतनाविशिष्ट शरीरसहित अभीष्ट विषयेन्द्रिय संयोगसुलभ आनन्दको भुलाकर सोये बिना विक्षिप्त होना सुनिश्चित है। कारण यह है कि अहङ्ग्रहपूर्वक अनुभूति बिना अनुभाव्य और अनुभविताके असम्भव है। अनुभाव्य, अनुभव और अनुभवितारूपा त्रिपुटीके कारण द्वैत सुनिश्चित है। द्वैतके कारण श्रम सुनिश्चित है। अत एव विश्रामकी भावनासे देहेन्द्रियप्राणान्त:करणसहित विषयजन्य आनन्दका विस्मरण नितान्त अपेक्षित है।

उवत रीतिसे प्रामाणिक निरीक्षण – परीक्षणके द्वारा सनातन संस्कृतिके अनुरूप विकासको परिभाषित और क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है । वस्तुस्थिति यह है कि वैदिक महर्षियोंके द्वारा चिरपरीक्षित और

प्रयुवत विकासको समझकर उसे क्रियान्वित करना ही समीचीन है। उसकी उपेक्षा और तिलाञ्जलि पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवनसहित स्थावर–जङ्गम प्राणियोंके लिए विघातक है ।

उक्त भावगत और कर्मगत विसङ्गतियोंके अतिरिक्त कृषिसम्पादनार्थ वर्षाके हेतु वन तथा पर्वतका विलोप, सूर्य – चन्द्रादि अधिदैव, सहयोगी मनुष्यों तथा पशुओंके स्थानपर भी यन्त्रोंका ही उपयोग; तद्वत् नास्तिकता, चेतनाविहीनता, बेरोजगारी, वर्गसङ्घर्ष आर्थिक विपन्नतामें अमोघ हेतु हैं। भूमिमें जल तथा वायुके सन्निवेशसे उर्वरताका, तेजके योगसे उष्णताका, आकाशके योगसे छिद्रका सन्निवेश निसर्ग सुलभ तथा अपेक्षित है। उसमें स्वानुकूल पुण्य गन्धोंका, मधुरादि रसोंका, शुवल – लोहित – पीत – कृष्ण तथा मिश्र रूपोंका, उष्ण –शीतादि स्पर्शोंका और प्रतिध्वनि आदि विविध शब्दोंका सन्निवेश अपेक्षित है। भूमि, पर्वत, जल, तेज तथा वायुके लिये विघातक और आकाशके अतिशय अवरोधक उच्च भवनादि महायान्त्रिक विविध प्रकल्प अर्थके लिये और अर्थोपभोक्ता सर्व स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके लिये विघातक हैं। जल, तेल, पाषाण, कोयला आदि विविध खनिज द्रव्य भूगर्भगत अर्थ हैं। महायन्त्रोंके माध्यमसे इनका अतिशयदोहन स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके लिये विनाशक है। विविध वृक्ष, वनस्पति, अदरख, हलदी, ज्वार, बाजरा, मवका, चना, मटर, मसूर, कुलथी, अरहर, केसर, मूँग, गेहूँ, धान, जौ, तिल, सरसो– आदि अनाज तथा आम, अमरूद,जामुन, कटहल, केला, पपीता आदि फल; तद्वत् कपास, केशर, चाय, काफी आदिके उत्पादनकी दृष्टिसे सब प्रकारकी भूमिकी उपयोगिता सिद्ध है। भूमिकी उर्वरताके अपहारक खाद तथा विविध वृक्षोंके प्रकल्प तथा प्रान्त और जिला आदिके विभाजनके व्याजसे भवनादिके माध्यमसे पृथिवीके अवरोधक अभियान, गाँव और वनका विलोप, महानगरोंके माध्यमसे तथा दिशाहीन शिक्षा, रक्षा, न्याय, जीविकापद्धति और सेवाप्रकल्पोंके माध्यमसे संयुक्त परिवार, कुलाचार, कुलवधू, कुलवर, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलगुरु आदिके विलोपके फलस्वरूप मानवजीवनका उपयोग और विनियोग भोजन करने तथा सन्तान उत्पन्न करनेतक सीमित करना इसकी अपूर्वता और वास्तविक उपयोगिताका अपहरण तथा विलोप है। ‘‘राज्यं पण्यं न कारयेत्।।” (महाभारत–शान्तिपर्व २४.१६)– ‘‘अपने राज्य (राष्ट्र) को बाजारका सौदा नहीं बनाना चाहिये।।” इस चेतावनीके विरुद्ध राज्यको विदेशी कलकारखाने आदिके माध्यमसे बाजारका सौदा बनानेकी परियोजनाएँ अर्थके अवरोधक और विघातक हैं। कम कीमतपर कच्ची सामग्रीको विदेश भेजकर उससे विनिर्मित पवकी सामग्रीको अधिक मूल्य देकर खरीदना आदि दरिद्रताके समग्र स्रोतोंको समृद्धिका स्रोत मानना विश्वस्तरपर आर्थिक विपन्नताका मूल है।

विकासके नामपर यज्ञादिके सम्पादक और पृथ्वीके धारक नदी, पर्वत, गोवंश आदिको विकृत, दूषित तथा विलुप्त करनेके; तद्वत् पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन – ऊर्जाके इन चारों स्रोतोंको विकृत, दूषित तथा कुपित करनेके प्रकल्पोंको निरस्त करनेकी नितान्त आवश्यकता है। दूषित पर्यावरण, नास्तिकता तथा मँहगाईसे रहित विकासको वेदादि सनातन शास्त्रोंके अनुसार परिभाषित तथा क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है। धर्मनिष्ठा और देवाराधनके विरुद्ध अश्लील मनोरञ्जन और मादक द्रव्योंकी दासता तथा असमयमें अयुक्त आहार – विहार – व्यवहार – निद्रा तथा विविध क्रियाकलापोंके कारण यान्त्रिक युगमें कामपुरुषार्थका विलोप भी सुनिश्चित है ।

परम अर्थ परमार्थसत्य स्रष्टा सर्वेश्वर ही वास्तव अर्थ हैं। उनकी अभिव्यक्तिरूप इस जीवन और जगत्

का तदर्थ समग्र उपयोग अर्थ – संज्ञक पुरुषार्थ है। परमार्थसत्य प्रत्यगात्मस्वरूप परप्रेमास्पद कमनीय वरणीय प्रभु ही वास्तव काम हैं। जीवन और जगत् का तदर्थ समग्र उपभोग एवम् विनियोग कामसंज्ञक पुरुषार्थ है।

इस प्रकार जीवनको सार्थक करनेवाले धर्म – मोक्ष – अर्थ और काम नामक चारों पुरुषार्थोंसे रहित व्यक्ति तथा सामजकी संरचना यान्त्रिकयुगका घातक परिणाम है।

यज्ञके सम्पादक पृथिवीके धारक धर्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल – इन सातोंमें वसु और वासुकि अर्थके देवता हैं तथा अनन्त और कपिल मोक्षके आचार्य हैं । इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और काल – ये पृथिवीके धारक सिद्ध होते हैं। इनमें काल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयका साधक सिद्ध है। पतिव्रता होनेपर भी असमयमें आतुरतापूर्वक पतिसमागमके फलस्वरूप दितिने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक असुरोंको जन्म दिया। इस यान्त्रिकयुगमें दिन और रात्रिकी विभाजकरेखा विलुप्त होनेके कारण उचित समय पर उचित पुरुषार्थकी सिद्धिका प्रयत्न न होनेके कारण काल कुपित है। उवत रीतिसे काल कवलित और पुरुषार्थविहीन व्यवित तथा समाजकी संरचना यान्त्रिकयुगकी विडम्बना है।

ध्यान रहे; जिस प्रकार 'दुइ कि होइ एक एक संग भुयाला। हँसव ठठाइ फुलाउब गाला' (रामचरितमानस २.३५.५) कैकेई देवीके इस वचनके अनुसार ठाहाका मारके हँसना और गाल फुलाके रहना दोनों एक साथ सम्भव नहीं है; उसी प्रकार महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग तथा दिव्य व्यक्तियों तथा वस्तुओंका अस्तित्व और दर्शन दोनों एक साथ सम्भव नहीं है।

ध्यान रहे; हमारे जीवनमें अन्न और जलके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे श्लेष्मक (कफ), तेजके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे पित्त तथा वायुके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे वात एवम् वात, पित्त तथा कफके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे सन्निपात होता है। महायन्त्रोंके प्रचुर अविष्कार तथा प्रयोगसुलभ विकृत, दूषित तथा कुपित पृथ्वी, पानी, प्रकाश और पवनके सङ्घातके फलस्वरूप समष्टि सन्निपातकी सर्वसंहारकता सुनिश्चित है।

ध्यान रहे, यह भूमण्डल स्थावर – जङ्गम प्राणियोंके सहित सर्व लोकोंका पोषण करनेके कारण सर्वधारक है। यज्ञसम्पादक व्यक्ति तथा वस्तु स्थावर – जङ्गम प्राणियोंके पोषक होनेके कारण पृथ्वीके धारक हैं; अत एव धर्मरूप समझने योग्य हैं।

दिशाहीन क्रिश्चियनतन्त्र, मुसलिमतन्त्र, कम्युनिष्टतन्त्र और इनके यन्त्रभूत शासनतन्त्रसे प्राप्त विसङ्गतियोंको दूर करनेकी भावनासे अपेक्षित प्रकल्पोंको क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है। सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण, स्वस्थ तथा सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाजकी संरचना विश्वस्तरपर राजनीतिकी स्वस्थ परिभाषा है। इसे क्रियान्वित करनेपर दिशाहीन क्रिश्चियनतन्त्रसे प्राप्त विसङ्गतियोंका निवारण सम्भव है। सुशीलता, शूरता तथा ओजस्वितासे समन्वित स्वस्थमार्गदर्शनसुलभ सङ्घबलको क्रियान्वित करनेपर दिशाहीन मुसलिमतन्त्रसे प्राप्त विसङ्गतियोंका निवारण सम्भवन है। आर्थिक विपन्नताविहीन अध्यात्मके प्रति उन्मुख व्यक्ति तथा समाजकी संरचनाके प्रकल्पको क्रियान्वित करनेपर दिशाहीन कम्युनिष्टतन्त्रसे प्राप्त विसङ्गतियोंका निवारण सम्भव है। विकासके प्रचलित प्रकल्पोंको विध्वंसक सिद्ध करनेपर दिशाहीन क्रिश्चियनतन्त्र, मुसलिमतन्त्र, कम्युनिष्टतन्त्रके यन्त्रभूत शासनतन्त्रसे प्राप्त विसङ्गतियोंका निवारण सम्भव है।

सनातनसंस्कृतिके विरूप तथा पाश्चात्य विकृतिके सर्वथा अनुरूप संविधान – न्याय – रक्षा – वाणिज्य – कृषि – पशुपालन – विवाह –सेवादि प्रकल्प राष्ट्रके अस्तित्व और आदर्शकी रक्षाके लिए अत्यन्त विघातक है।

सनातनसंस्कृतिके अनुरूप शासनकालमें देवियाँ गृहमन्त्रालयके दायित्वका निर्वाह करती थीं। वे सर्वथा शीलसम्पन्न तथा पति, श्वसुर, पुत्र, पिता तथा भ्राताके द्वारा संपोषित और सुरक्षित थीं। वे सावित्री, सुमित्रा, कौशल्या, अनसूया, सीता, गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा, सुलभा, देवकी, उभयभारती – सरीखी सिद्धा, सुशीला, विदुषी और योगिनी थीं।

कहा जा सकता है कि ''दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक धरातलपर सनातनसंस्कृतिका शास्त्रसम्मतपरम्पराप्राप्त अन्न – जल –दुग्ध –फलसंसाधन तथा अन्नादिसेवनरूप भोजन तद्वत् वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्सव, त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह, लोकरञ्जन तथा लोकसङ्ग्रहका प्रकार निस्सन्देह सर्वोत्कृष्ट है; तथापि मार्गनिर्माण, सेतु, पुल, ट्रेक्टर, बस, कार, रेल, वायुयान, जलयान, डीजल, पेट्रोल, विद्युत् – आदि यातायात तथा जीवनयापनके सार्वभौम संसाधनकी दृष्टिसे एवम् बन्दूक, बम आदि युद्ध – संसाधन और मोवाइल आदि सम्पर्वसंसाधनकी दृष्टिसे वर्तमान युगको उन्नत मानना उचित है। अभिप्राय यह है कि प्रशस्त मार्ग तथा द्रुतगति – सम्पन्न यातायातके साधनोंकी विश्वस्तरपर बहुलता तथा विद्युत् – सम्पन्नताके कारण मार्गविहीन, द्रुतसाधनहीन, अन्धकारमय प्रकृति – परतन्त्र अतीतकी अपेक्षा सरल, सुगम, सुखद प्रगतिको स्वीकार करनेकी विवशता है ।"

परन्तु गम्भीर विचार करनेपर उक्त मनोभाव भी श्रवण सुखद किन्तु आपात रमणीय ही परिलक्षित है। विषाक्त वायुमण्डल, विश्वयुद्धकी विभीषिका, सङ्क्रामक रोग, रात्रिजागरण, दिनमें शयन, स्त्री – पुरुषमें विभाजक बिन्दुओंका विलोप, आर्थिक विपन्नता, चेतनाविहीनतादि दृष्टियोंसे उक्त उत्कर्ष वरदान कम तथा अभिशाप अधिक सिद्ध है। प्रकाश और प्रशस्त पथकी सुलभताके कारण रात्रिके कार्यका दिनमें तथा दिनके कार्यका रात्रिमें सम्पादनसे आलस्य, विस्मृति, व्यग्रता, कर्वशता, आक्रोश, अराजकता तथा रुग्णता अनिवार्य है। वाहन तथा यन्त्रोंके सञ्चालनके लिए विद्युत्, डीजल, पेट्रोल आदिके अत्यधिक उपयोगसे प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिकी मन्दता, पृथिव्यादि भूत चतुष्टयकी मलिनता, दैवी प्रकोप, गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध (निर्लोभ), दानशील, गङ्गादि, हिमालयादि, धर्मादिका द्रुतगतिसे विलोप परिलक्षित है।

तमोगुणकी प्रचुरता यान्त्रिकयुगकी देन है । यही कारण है कि विकास – विनाश, हानि–लाभ, उत्थान –पतनकी सर्वथा विपरीत अवधारणा उत्कर्षके नाम पर अपकर्ष प्रदान करनेवाली है । सर्वत्र पवका मार्ग और सबके लिए पवका भवन यान्त्रिकयुगमें विकासकी अवधारणा है; जिसके फलस्वरूप खनिज द्रव्य, वन, पर्वत, कृषियोग्यभूमिका; तद्वत् पिपीलिका, पक्षी आदिकी प्रजातियोंका विलोप भी सुनिश्चित है और मनुष्योंके द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत हव्य तथा कव्यादिमें अधिकृत देवता तथा पितरोंका उनपर प्रकोप भी सुनिश्चित है। भूकम्प, सुनामी लहर, आँधी, अतिवृष्टि, अवृष्टि, असमयवृष्टि आदि दैवी प्रकोपका निवारण सनातनविधासे व्यक्ति तथा समाजकी संरचना और पर्यावरण – परियोजनाके बिना सर्वथा असम्भव है।

कृषिके लिए भूदेवी, अश्विनीकुमार, वरुण, इन्द्र, वायु, दिव्, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत्, गुरु,

शुक्रादिकी उपासनासिद्ध अनुकूलता अपेक्षित है। तदर्थ संवर्तक, आवर्त, पुष्कर, द्रोण – संज्ञक मेघमण्डलकी अनुकूलता भी अपेक्षित है। गाय, बैल, साँढ़, भैंस, भैंसा, ऊँट, भेंड़, बकरी, घोड़े, खच्चर, मेढक, कोयल, तोता – आदि पशु – पक्षियों, लोकगीतोंकी तथा सहयोगी मनुष्योंकी एवं हलादि यन्त्रोंकी नितान्त आवश्यकता है। केवल गिने – चुने व्यक्तियोंके सहित विविध महायन्त्रोंके माध्यमसे कृषिप्रकल्प अत्यन्त ही घातक है। नहर, बाँध, सुरङ्गादिपरियोजनाओंके माध्यमसे अधिदैवके अनुग्रहकी वैकल्पिक परिकल्पना; तद्वत् कृत्रिम विद्युत् से भट्ठी, प्रकाशसहित हीटर, प्रकाशसहित कूलर और प्रकाश क्रमश: अग्नि, सूर्य, चन्द्र तथा विद्युत् के वैकल्पिक प्रकल्प पर्यावरणके विघातक तथा जीवनीशक्तिके अपहारक हैं।

महाराजाधिराज पृथुने कृषिके अनुकूल भूमि सुलभ कराकर और स्थावर – जङ्गम प्राणिमात्रको; तद्वत् पर्वतादिको निसर्गसिद्ध परम्पराप्राप्त अन्न सुलभ कराकर आदर्श शासकके रूपमें स्वयंको ख्यापित किया।

भूमि अभीष्ट वस्तुओंको देनेमें समर्थ है। पृथुमहाभागने जातिप्रमुखको वत्स, जातिको दोग्धा तथा सञ्चय – संस्थानको पात्र सुनिश्चित कर गौरूपा पृथ्वीके दोहनसे विविध प्रकारके अन्न प्राप्त करनेका मार्ग प्रशस्त किया । तदनुसार उन्होंने समस्त धान्य मनुष्योंको; वेद ऋषियोंको; अमृत एवम् मनोबलरूप वीर्य – इन्द्रियबलरूप ओज – शारीरक बलरूप सहस् देवोंको; सुरासव दैत्य – दानव – असुरोंको; गन्ध – सङ्गीतमाधुर्य – सौन्दर्य गन्धर्व तथा अप्सराओंको; कव्य पितरोंको; हव्य देवोंको; अष्टसिद्धि सिद्धोंको; सिद्धि एवम् विविधविद्या विद्याधरोंको; अन्तर्धान तथा कायव्यूहादि किम्पुरुषादि और मायावियोंको; रुधिरासव यक्ष – राक्षस – भूत–प्रेतोंको; विष सर्पादि विषधरोंको; तृणादि पशुओंको; कच्चा मांस व्याघ्रादिकोंको; कीट – पतङ्ग – फलादि पक्षियोंको; रस वृक्षोंको; मणि – माणिवयादि विविध धातु स्थावर – जङ्गम – प्राणिनिकेत पर्वतोंको सुलभ कराया।

महाराजाधिराज पृथु भगवान् विष्णुकी आठवीं पीढ़ीमें समुत्पन्न थे। उनके पूर्वज वेन, अतिबल, अनङ्ग, कर्दम, कीर्तिमान्, विरजा और विष्णु मान्य हैं। उन्होंने सागरतटवर्ती अनूपसंज्ञक क्षेत्रमें सूतको तथा मगधक्षेत्रमें मागधको बसाया। भगवान् विष्णु, देववृन्दसहित इन्द्र, ऋषिवृन्द, प्रजापतिवृन्द तथा ब्राह्मणोंने उनका अभिषेक किया। वेदमूर्ति शुक्राचार्य उनके पुरोहित हुए। वालखिल्यगण तथा सरस्वतीतटवर्ती महर्षिवृन्द उनके मन्त्री हुए। गर्गाचार्य उनके ज्योतिषी हुए। उन्होंने भूमिको समतल बनाया। उन्होंने धनुष्कोटिद्वारा शिलासमूहोंको उखाड़कर उन्हें सञ्चितकर पर्वतोंको विस्तृत तथा उन्नत किया। उन्होंने पृथ्वीका दोहनकर यक्ष – राक्षस – नागादिके निमित्त सत्रह प्रकारके अभिमत धान्योंका दोहन किया। –

तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च।

यक्षराक्षसनागैश्चापीप्सितं यस्य यस्य यत्॥

(महाभारत – शान्तिपर्व ५९.१२४)

पृथ्वी प्रकृतिका चरम परिणाम है। इसमें गन्ध नामक गुण स्वत: सन्निहित है। इसे जलसे रस, तेजसे रूप, वायुसे स्पर्श, आकाशसे शब्द नामक गुण सुलभ है। इसमें अन्न और आकाशमय अन्त:करणको, जल तथा वायुमय प्राणको, तेजोमयी वाव् को; तद्वत् अन्य करणग्रामको परिपुष्ट करनेकी शक्ति सन्निहित है। अत: धेनुरूपिणी भूदेवी शब्दब्रह्मात्मक वेदसे लेकर मणि – माणिवयादिपर्यन्त सकलान्न सुलभ करानेकी क्षमतासे

सम्पन्न है।

भूदेवीसे विनिर्मित शरीर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, निषाद, इष्ट, अनिष्ट, प्रणिधान संज्ञक दशविध शब्दाभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह उष्ण, शीत, सुख, दु:ख, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, रूक्ष, लघु, गुरु, गुरुतर – द्वादशविध स्पर्शका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, अनुवृत्तवान् (चतुर्दिव् गोल), शुक्ल, कृष्ण, रक्त, पीत, नील, अरुण, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण (भास्वर), पिच्छल (स्नेहन), मृदु, दारुण – संज्ञक षोडशविध रूपका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय – नामक षड्विध रसोंका अनुभवसंस्थानरूप आश्रय होनेसे षडाश्रय है। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी (दूरगामी तीक्ष्ण), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष, विशद – नामक नवविध गन्धका अनुभवसंस्थान भोगायतनरूप यह शरीर है। मनुष्यादि शरीर क्रमश: रस, शोणित, मांस, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र –संज्ञक अष्ट धातुमय और त्वक्, मांस, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा – नामक षाट्कौशिक (छह कोशोंवाला) है। अत एव इसकी अन्नमयसंज्ञा है।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।

फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ।।

(श्रीमद्भागवत १. १३. ४६)

''हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पाँववाले पशुओंके बिना पैरवाले तृणादि, बड़े जीवोंके छोटे जीव (प्राणी) आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण है।।''

देवान्न अमृत और सिद्धान्न अष्टसिद्धिके अतिरिक्त अन्य अन्न मर्त्यलोकमें आंशिकरूपमें आज भी सुलभ हैं। महौषधि, मणि, मन्त्र तथा कर्मानुरूप सिद्धशरीर और देवशरीर – सुलभ सिद्धि और अमृत भी भूमिसापेक्ष ही है। पञ्चीकरणकी प्रक्रियाके अनुसार स्थूल पृथ्वीमें १/ ८ आकाशका, १/ ८ वायुका, १/ ८ तेजका, १/८ जलका तथा १/२ स्वयंका भाग सन्निहित है। उसमें आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, तेजका गुण रूप, जलका गुण रस तथा स्वयंका गुण गन्ध भी सन्निहित है। अत: महौषधि तथा मणिकी भौमिकता (भूमयता) सिद्ध है। मन्त्र शब्दात्मक हैं; अत: उनकी भी उक्तरीतिसे भौमिकता (भूमयता) सिद्ध है। हव्य तथा कव्यकी भूमयता सिद्ध होनेके कारण हव्य – कव्यमय द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक देव, पितर, सिद्धादि शरीरोंकी अन्नमयता उसी प्रकार सिद्ध है, जिस प्रकार अतीन्द्रिय मनकी अन्नमयता।

दुग्धसे दधि, दधिसे नवनीत, नवनीतसे घृत तथा घृतसे मण्ड सुलभ करनेकी विधा मनुष्योंको आज भी विदित है। स्थावर – जङ्गम – प्राणिमात्रको; तद्वत् पर्वतादिको निसर्गसिद्ध परम्पराप्राप्त अन्न सुलभ करानेकी सनातनविधा यज्ञ, वलिवैश्वदेव, श्राद्ध. तर्पणादि नित्य – नैमित्तक कृत्य हैं; जो कि आंशिकरूपमें भारत् नेपाल और भूटानादिमें प्रचलित हैं।

जागरकी अपेक्षा स्वप्नमें सुलभ उत्कृष्ट सिद्धियोंका रहस्य स्थूलप्रपञ्चका अभानात्मक वियोग है। स्वप्नकी अपेक्षा सुषुप्तिमें सुलभ उत्कृष्ट सिद्धियोंका रहस्य सूक्ष्म प्रपञ्चका अभानात्मक वियोग है। स्वप्नमें मनोमय पदार्थोंसे भूख – प्यास तथा सर्दी – गर्मीका शमन तद्वत् पञ्च भूतसहित स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंका सर्जन एवम् आकाशगमनादि सिद्धियोंका उद्भव परिलक्षित है। जागरदशामें उसकी समुपलब्धि योगधारणासुलभ

संयमसे सम्भव है। सुषुप्तिमें अन्त: आराम, अन्तर्ज्योति और अन्त:सुखकी स्फूर्तिकी अनुभूति सुलभ है। जागरदशामें उसकी समुपलब्धि भी योगधारणासुलभ संयमसे सम्भव है।

पूर्वोक्त रीतिसे स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंको अन्न, जल और आश्रय – प्रदान करनेवाली भूमिको ओजस्विताविहीन करना जघन्य अपराध है। निसर्गसिद्ध प्रवाहसम्पन्न नदियोंको अविरलता तथा निर्मलताविहीन बनाना जघन्य अपराध है। प्रकाशक, दाहक, उष्णता – स्निग्धता – आह्लादप्रदायक अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् और नक्षत्र – संज्ञक जलवर्षक वायुधारक तथा विस्तारक, त्रैलोवयप्रवर्तक, शब्दविस्तारक तेज (महाभारत – शान्तिपर्व ३६२)को विकृत, दूषित और क्षुब्ध करना जघन्य अपराध है। इस प्रकार ऊर्जाके दृष्टिगोचर स्रोत भूमि, जल, तेज तथा वायुको विकृत, दूषित और क्षुब्ध न कर इन्हें सुसंस्कृत, सुभूषित और सुशान्त रखने तथा करनेमें ही मानव अधिकृत है। ऊर्जाके दृष्टिगोचर स्रोत भूमि, जल, तेज तथा वायुको धारण करनेवाला अवकाशप्रद आकाश ऊर्जनायक शब्दगुणवाहक है। शब्दकी गति कालगर्भित और कालातीत सर्व वस्तुओंमें है। गगनचुम्बी अट्टालिका और महायान्त्रिक कलकारखाने आदिके माध्यमसे आकाशका अमर्यादित अवरोध जघन्य अपराध है। अश्लील शब्दोंसे आकाशको दूषित करना जघन्य अपराध है।

भारत, नेपाल तथा भूटानादि हिन्दुबहुल जिन देशोंमें सनातन वर्णाश्रमव्यवस्थाके प्रति आस्थान्वित सनातन परम्पराप्राप्त ब्राह्मणादि बीजरूपमें अवशिष्ट हैं, उन्हें मन्वादि धर्म तथा अध्यात्मशास्त्रोंके अनुरूप सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत करने और सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता है। पुराणोंके अनुसार भगवान् कल्किका अवतार कलियुग तथा सत्ययुगकी सन्धिमें ब्राह्मणकुलमें सुनिश्चित है। अत एव कलिके चरम चरणतक वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करतासे विहीन ब्राह्मणादि कुलका अवशिष्ट रहना सम्भावित तथा सुनिश्चित है; अत एव तदर्थ प्रयास विहित है।

जिनका जन्म, लालन – पालन, शिक्षण और पोषण महायान्त्रिक युगमें हुआ है, उनका शेष जीवन भी महायान्त्रिक प्रकल्पके अनुसार ही सध पाना सम्भव हैन्। मणिविहिन मणिधर सर्प, जलविहीन मीन तथा नीरविहीन नीरजके सदृश महायान्त्रिक उपकरणविहीन महायान्त्रिक मनुष्योंको उज्जीवित रखपाना असम्भव है। परन्तु जिनका जन्म, लालन – पालन, शिक्षण और पोषण गाँव तथा वनमें हुआ है, उनके जीवनको सनातनसंस्कृतिके अनुरूप ढाल पाना सम्भव है। मन्वादि धर्मशास्त्रोंके अनुसार गर्भाधानादि संस्कार, शिक्षा, रक्षा, स्ववर्णाश्रमानुरूप जीविका, विवाहादि प्रकल्पोंको उनके माध्यमसे क्रियान्वित किया जा सकता है। पापको उचितस्थलपर प्रकट करने तथा पुण्यको छिपानकी और पापापनोदनकी भावनासे पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित्त करनेकी; तद्वत् पश्चात्ताप तथा प्रायश्चित्तसे सुदूर जन्मजात तथा प्रशिक्षणप्राप्त अराजक तत्त्वोंको दण्ड देनेकी सनातनशास्त्रसम्मत – न्याय – परम्पराको मन्वादि धर्मशास्त्रोंके अनुसार उज्जीवित करना सम्भव है। लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्ष और भगवत्सामीप्य – सारूप्य– भगवत्तादात्म्यापत्तिरूप सायुज्य तथा भगवत्साधर्म्यसिद्धिरूप कैवल्यको जीवनका लक्ष्य निर्धारित करनेपर सर्वसुमङ्गल सुनिश्चित है।

७. सनातन – प्रकल्प

मानवजीवनका दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर अद्भुत महत्त्व है। इसमें कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय तथा प्राणोंके सहित अन्त:करणका सम्यक् विकास है। यह कर्मायतन, भोगायतन तथा ज्ञानायतन होनेके कारण देवदुर्लभ मान्य है। इसमें धर्मसम्पादन, वैराग्य, भक्ति और भगवत्प्रबोधकी शक्ति सन्निहित है। अत एव स्त्री तथा शूद्रादिकी भी देवदुर्लभता निसर्गसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें उन्हें मानवोचित स्नेह, सहानुभूति, सेवा, शिक्षा, संस्कार तथा सम्पन्नतासे सम्पन्न करना आवश्यक है। सनातनसंस्कृतिके सर्वथा अनुरूप जीवनप्रणालीमें कुटीर तथा लघु उद्योगके सम्पादक शूद्रादिको वैश्य उचित लाभ देकर उपलब्ध सामग्रियोंका उचित मूल्यपर विक्रय करते थे। वैश्य कृषि तथा गोपालनके द्वारा भी जीविकोपार्जन करते थे। क्षत्रिय धर्मयुद्धके द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। ब्राह्मण अध्यापन, दान, यज्ञादि विविध अनुष्ठान और खेत – खलिहान तथा अनाजमण्डीमें अवशिष्ट अन्नके सञ्चयसंज्ञक शिलोञ्छवृत्तिसे, अयाचितवृत्तिसे सुलभ धन तथा सामग्रीसे यज्ञ – दान – अतिथिसेवा– देवपितरपोषण – तर्पणादि दैनिन्दिनकृत्यका निर्वाह करते थे। ब्रह्मचारी और सन्न्यासी भिक्षावृत्तिसे तथा वानप्रस्थ कन्द – मूल तथा फलके चयनसे जीवननिर्वाह करते थे।

उक्तरीतिसे सनातनसंस्कृतिमें सबकी जीविका जन्मसे आरक्षित थी।

द्यूत, मद्य, हिंसादि अनर्थपर्यवसायी अर्थ; मूर्च्छा और मृत्युपर्यवसायी काम; वर्णसङ्कर्णता तथा कर्मसङ्करतामूलक धर्म और देहात्मभावित मोक्षकी गाथाने; तद्वत् वर्ण, वेष, विधि – निरपेक्ष कर्मकाण्ड, विवेक तथा वैराग्यनिरपेक्ष उपासनाकाण्ड, अहिंसा–सत्य – अस्तेय – ब्रह्मचर्य – अपरिग्रह संज्ञक यम तथा शौच – सन्तोष – तप: – स्वाध्याय– ईश्वरप्रणिधान संज्ञक नियम – निरपेक्ष योग, विवेकवैराग्यादिनिरपेक्ष वेदान्त; तद्वत् धर्मविहीन शासनतन्त्रने पुरुषार्थविहीन मानवसमाजको प्रेय तथा श्रेय दोनोंसे वञ्चित बना दिया है।

जिन अर्थ और कामपर लट्टू होकर विश्वस्तरपर सामाजिक धरातलपर मनुष्योंने प्रबल बहुमतसे धर्म

और मोक्षका परित्याग किया है, उन्हें मोक्षपर्यवसायी धर्मके बिना पुरुषार्थ बना पानेकी क्षमता न होनेके कारण पुरुषार्थविहीन मानवसमाजने स्वयंके और पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके सहित अन्य प्राणियोंके विकृत तथा विलुप्त होनेका बानक बनाकर सबके हितपर पानी फेरनेका काम किया है।

सनातनधर्ममें शिक्षा, रक्षा, न्याय, अर्थ, सेवादिकी व्यवस्था सबको सदा समुचित रूपसे सुलभ करानेकी भावनासे निसर्गसिद्ध वर्णाश्रमव्यवस्थाका प्रकल्प है; अत: समय और सम्पत्तिका सदुपयोग, कर्त्तव्यपालनार्थ अपेक्षित संस्कारसम्पन्नता, स्वावलम्बन, सुबुद्धता, दम (मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम), दया तथा दानादि मानवोचित शीलसम्पन्नता, वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करतासे पराङ्मुखता, संयुवतपरिवारकी सुलभता आदि दिव्यताओंसे सम्पन्न व्यवितगत जीवन और सामाजिक संरचना इसमें सन्निहित है ।

वैकल्पिक आरक्षणमें प्रतिभा तथा प्रगतिका विलोप, प्रवञ्चना, प्रतिशोध और परतन्त्रता (राष्ट्रका विखण्डन और विदेशीतन्त्रद्वारा सञ्चालन) सुनिश्चित है। अभिप्राय यह है कि स्वतन्त्र भारतमें क्रियान्वित वैकल्पिक आरक्षणमें अधिकृत और अनधिकृत उभय वर्गकी प्रतिभाकी हानि सुनिश्चित है। अत एव राष्ठ्रकी प्रगतिका अवरोध परिलक्षित है। आरक्षणमें अधिकृतोंकी

अपेक्षा शासनतन्त्रके पास सेवा प्रकल्प स्वल्प हैं; अत: आरक्षणकी घोषणा प्रवञ्चनासे परिपूर्ण अवश्य है। आरक्षणमें अधिकृतोंके प्रति अनधिकृतवर्गके हृदयमें प्रतिशोधकी भावना अवश्य है। उक्त हेतुओंसे राष्ट्रकी विपन्नताके फलस्वरूप राष्ट्रकी परतन्त्रता अर्थात् राष्ट्रका विखण्डन और विदेशीतन्त्रद्वारा सञ्चालन भी सुनिश्चित है।

ध्यान रहे; शिक्षा, रक्षा, अर्थ, सेवा, न्याय और स्वच्छता आदि समाजमें सन्तुलितरूपसे सबको सदा सुलभ रहें, इसकी रागद्वेषरहित सनातन शास्त्रसम्मत वैज्ञानिकतम विधा सनातन वर्णव्यवस्था है। इसके प्रति अनास्था या इसका दुरपयोग भ्रम, विद्वेष या षड्यन्त्रमूलक ही है।

किसी भी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाको शिक्षातन्त्रके सञ्चालक ब्राह्मण, रक्षातन्त्रके सञ्चालक क्षत्रिय, कृषि – गोरक्ष्य – वाणिज्यतन्त्रके सञ्चालक वैश्य और सेवादि – तन्त्रके सञ्चालक शूद्र चाहिये। परन्तु परम्पराप्राप्त ब्राह्मणादिके विलोप या उनके प्रति विद्वेषकी दशामें वैकल्पिक ब्राह्मणादिकी संरचना अनिवार्य है।

वंशपरम्परा प्राप्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादिकी मान्यता न होनेके कारण और शिक्षा, रक्षा, न्याय, कृषि, वाणिज्य, सेवा और लघु उद्योगोंकी आवश्यकता होनेके कारण वैकल्पिक ब्राह्मणादिकी संरचनामें समय तथा सम्पत्तिका अतिरिक्त उपयोग सुनिश्चित है। तद्वत् परम्पराप्राप्त सुदृढ शील तथा संस्कारका तिरोधान तथा अनाधान भी सुनिश्चित है। तद्वत् शिक्षा – रक्षा – वाणिज्य– सेवादिके विविध प्रकल्पोंके क्रियान्वयनमें और जीवननिर्वाहमें प्रयुक्त तथा विनियुक्त अपेक्षित वस्तु – उत्पादक उद्योगविभागोंमें अभिमत व्यक्तियोंकी सङ्ख्याका असन्तुलन, संयुक्तपरिवारका विघटन, कुलधर्मादिका विलोप, वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करताका प्रकोप, पारिवारिक स्नेह तथा सम्बन्धमें अस्थिरता, आर्थिक विपन्नता तथा विश्वयुद्धकी विभीषिकादि दोषोंका सन्निवेश सुनिश्चित है।

सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधाना:

सर्वे वर्णा: पाल्यमाना भवन्ति।

सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजं-

स्त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणम्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ६३. २७)

''सब धर्मोंमें राजधर्म ही प्रधान है; क्योंकि उसके द्वारा सब वर्णोंका पालन होता है। राजन् ! राजधर्ममें धन - मान - प्राण - परिजन सब प्रकारके त्यागका समावेश है। ऋषिगण त्यागको सर्वश्रेष्ठ तथा प्राचीन धर्म बताते हैं।।"

मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां

सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विबुद्धाः।

सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः

क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ६३. २८)

''यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो तीनों वेद रसातलको चले जायँ और वेदोंके नष्ट होनेसे समाजमें प्रचलित सब धर्मोंका नाश हो जाय। पुरातन राजधर्म जिसे क्षात्रधर्म भी कहते हैं, यदि लुप्त हो जाय तो आश्रमोंके सम्पूर्ण धर्मोंका ही लोप हो जाय।।"

शिष्ट्यार्थं विहितो दण्डो न वृद्ध्यार्थं विनिश्चयः।

ये च शिष्टान् प्रबाधन्ते दण्डस्तेषां वधः स्मृतः।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १३५.२०)

''दण्डका विधान शिष्ट - पुरुषों (सज्जनों) की रक्षाकी भावनासे तथा दुष्टोंके दमनके लिये है, न कि अपनी सम्पत्ति बढ़ानेके लिये। जो शिष्ट पुरुषोंको सताते हैं, उनका वध ही उनका दण्ड माना गया है।।"

सत्त्वगुणके चरम उत्कर्षसे दण्डनिरपेक्ष स्वात्मतन्त्रकी स्थापना सम्भव है -

न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः।

स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्।।

(महाभारत - भीष्मपर्व ११.३९)

''राजेन्द्र! शाकद्वीपके मङ्क, मशक, मानस, मन्दक - नामक जनपदोंमें न कोई राजा है, न दण्ड है और न दण्ड देनेवाला ही। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं। वे स्वधर्मपालनके ही प्रभावसे एक - दूसरेकी रक्षा करते हैं।।"

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।

धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ५९.१४)

‘‘आदि सत्ययुगमें न कोई राज्य था, न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देनेवाला; समस्त प्रजा धर्मके द्वारा ही एक – दूसरेकी रक्षा करती थी।।”

सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वरकी प्रेरणासे काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान तथा मद – संज्ञक षड्वर्गके अवशीभूत श्रीब्रह्माको वेदोंका, बृहस्पतिको वेदाङ्गोंका तथा शुक्राचार्यको नीतिशास्त्रका, देवर्षि नारदको गान्धर्ववेदका, श्रीभरद्वाजको धनुर्वेदका, महर्षि गार्ग्यको देवर्षियोंके चरित्रका, श्रीकृष्णात्रेयको आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त हुआ।

एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, संयमपरायण, त्रिकालज्ञ तथा सत्यधर्मपरायण श्रीब्रह्मा एवम् चित्रशिखण्डी – संज्ञक मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठने धर्म, अर्थ, काम एवम् मोक्ष तथा स्वर्ग और भूमण्डलमें सन्निहित मर्यादाका प्रतिपादन शतसहस्र अध्यायोंके द्वारा किया। उस नीतिशास्त्रमें तम:प्रधान कामका, रज:प्रधान अर्थका, सत्त्वप्रधान धर्मका तथा आत्मप्रधान मोक्षका एवम् स्थान (धर्मस्थिति), वृद्धि (धर्मोत्कर्ष), क्षय (दुरितक्षय)का तथा साम, दान, दण्ड, भेदका वर्णन सन्निहित था। उसमें त्रयी (कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड), आन्विक्षिकी (ज्ञानकाण्ड), वार्ता (कृषि, गोरक्ष्य, वाणिज्य) और राजधर्मादिका प्रतिपादन किया गया था। उसके अनुसार

प्रजाका रञ्जन करनेके कारण शासक राजा कहा जाता है। ब्राह्मणोपलक्षित प्रजावर्गको क्षत (पीड़ित) होनेसे त्राण करनेवाला होनेके कारण वह क्षत्रिय कहा जाता है। –

रञ्जिताश्च प्रजा: सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते।।

ब्राह्मणानां क्षतत्राणात् तत: क्षत्रिय उच्यते।

(महाभारत - शान्तिपर्व ५९.१२५, १२५.१/२)

‘‘महाराजा पृथुने समस्त प्रजाओंका रञ्जन किया था; अत एव वे राजा कहलाते थे। ब्राह्मणोंको क्षत (पीड़ित) होनेसे त्राण करनेवाला होनेके कारण वे क्षत्रिय कहे जाने लगे।।”

अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।

श्रद्धा च नो मा व्यगमन्मा च याचिष्म कञ्चन।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २९.१२१)

श्रीरन्तिदेवकी कामना – ‘‘हमारे पास अन्न बहुत हो, हम सदा अतिथियोंकी सेवाका अवसर प्राप्त करें, हमारी श्रद्धा दूर न हो और हम किसीसे कुछ न माँगे।।”

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-

मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।

आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-

मन्त:स्थितो येन भवन्त्यदु:खा:।।

(श्रीमद्भागवत ९.२१. १२)

‘‘मैं ईश्वरसे अष्ट सिद्धियोंसे युक्त परम गति नहीं चाहता। मैं मोक्षकी भी कामना नहीं करता। मैं केवल

यही चाहता हूँ कि मैं समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दु:ख मैं ही सहन करूँ, जिससे अन्य किसी प्राणीको दु:ख न मिले।।”

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला

नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्र:।

सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां

काले काले पालनीयो भवद्भि:।।

(स्कन्दपुराण - धर्मारण्यखण्ड ३४.३८)

‘‘भावी राजाओ! रामचन्द्र आपको पुन:- पुन: नमस्कार करके यह याचना करता है कि मनुष्योंके लिये जो यह वेदादि शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमधर्मके अनुपालनसे क्रमिक उत्कर्षको प्राप्त यम - नियमादिरूप सामान्य धर्मसेतु है, वह अपने - अपने समयमें आपके द्वारा अवश्य ही पालनीय है।।”

जलयान, स्थलयान तथा नभोमार्गसे चलनेवाले वायुयान; जल, स्थल तथा नभ; अग्नि - सूर्य - चन्द्र - नक्षत्र - विद्युत्; पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नद - निर्झर - समुद्र, पर्वत, वनस्पति, अन्न, पशु, यन्त्र, सुवर्णादि धातु, प्रजा, प्रज्ञा, आत्मविद्याविशारद आचार्य, देवी - देवता, यज्ञविद्याविशारद पुरोहित, स्त्री - पुत्र, परिकर और माता तथा पिता एवम् काल और धर्मका सदुपयोग सर्व सम्पदाका स्रोत है।

कृषिर्वणिवपथो दुर्गं सेतु: कुञ्जरबन्धनम्।।

खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम्।

अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत् ।।

(अग्निपुराण २३९. ४४-४५)

‘‘खेती, व्यापारियोंके उपयोगमें आने वाले जलमार्ग - पर्वतादि - स्थल, दुर्ग, सेतुबन्ध (नहर, बाँध आदि), हाथी आदिके पकड़नेके स्थान, सोने - चाँदी आदिकी खानें, वनमें उत्पन्न साखू - शीशम आदिकी निकासीके स्थान तथा शून्य स्थलोंको बसाना - आयके इन आठ द्वारोंको ‘अष्टवर्ग’ कहते हैं। सद्विचार तथा सदाचारसम्पन्न राजा इसकी निरन्तर रक्षा करे।।’’

चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन्।

क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिन: शस्त्रपाणिन:।।

वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशतिसङ्ख्याया।

त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके।।

अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिवं तथा।

पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम् ।। श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।

कार्ये विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम्।।

वर्जितं चैव व्यसनै: मम सुघोरै: सप्तभिर्भृशम्।

अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ८५.७-११)

''राजाको चाहिए कि जो वेदविद्यामें विद्वान्, निर्भीक, बाहर - भीतरसे शुद्ध एवम् स्नातक हों - ऐसे चार ब्राह्मण, शरीरसे बलवान् तथा शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन - धान्यसे सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार - विचारवाले तीन विनयशील शूद्र तथा अष्टगुणसम्पन्न पुराणविद्याविशारद एक सूतको मन्त्रिमण्डलमें सन्निहित करे। सेवापरायणता, हितोपदेश श्रवण तथा धारण - तत्परता, स्मृतिशीलता, कार्याकार्य - परिणाम - समीक्षकता, कार्यसाधक प्रकारान्तर - परिशीलनदक्षता अर्थात् वितर्वसम्पन्नता, शिल्पादि कलाकुशलता और तत्त्वज्ञानसम्पन्नता - ये आठ गुण हैं। सूतकी आयु लगभग पचास वर्षकी हो तथा वह निर्भीक, दोषदृष्टिरहित, श्रुति - स्मृतिज्ञानसम्पन्न, विनयशील, समदर्शी, वादी - प्रतिवादीके विवादको निपटानेमें समर्थ, निर्लोभ एवम् सप्त दुर्व्यसनोंसे विमुक्त हो। शिकार, जूआ, परस्त्री - प्रसङ्ग, मद्यपान - संज्ञक चतुर्विध कामज दोष तद्वत् मारना, गाली देना तथा दूसरेकी चीज दूषित करना - त्रिविध क्रोधज दुर्व्यसन हैं। उक्त रीतिसे कुल आठ (चार ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य, एक शूद्र एवम् एक सूत) मन्त्रियोंसे राजा गुप्त मन्त्रणा करे।।''

अभिप्राय यह है कि समाजको अपेक्षित शिक्षक, न्यायाधीश, अधिवक्ता, चिकित्सक, वास्तुविद्याविशारद, रक्षक, कृषक, वणिव्, आभूषणकार, सेवक, नापित, रजक, कुम्भकार,चर्मकार, जुलाहा, सफाईकर्मी आदि यदि वंशपरम्परासे नहीं चाहिये, तब इनके वैकल्पिक निर्माणके लिए अपेक्षित समय और शिक्षणसंस्थानादिसे धनका अपव्यय, अपेक्षितसंस्कारविहीनता, जीविकाविहीनता (बेरोजगारी), समय और साधनका दुरपयोग, संयुक्तपरिवारका विघटन, विभागीय असन्तुलन, वर्णविभागगत अपेक्षित जनसङ्ख्यामें विसङ्गति, पारस्परिक स्नेह और सद्भावका लोप तथा उत्तरोत्तर प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिका ह्रास, अर्थकामकी दासता तथा श्रौतस्मार्तसम्मत कर्मोपासनादिका विलोप और उसके कारण इन्द्र - वरुणादि लोकपाल पदोंकी अप्राप्ति अनिवार्य है। साथ ही शास्त्रप्रदत्त भेदके अभावमें समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग और कालक्रमसे अतिक्रमण भी असम्भव है। प्रवृत्तिको निवृत्ति तथा निवृत्तिको निर्वृति (मुक्ति) पर्यवसायी बना पाना तथा धर्म और मोक्षसे विमुख जीवनमें अर्थ तथा कामको चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, द्यूत (जुआ) और मद्य (शराब) संज्ञक पन्द्रह अनर्थोंसे अछूता रख कर पुरषार्थ बना पाना सर्वथा असम्भव है। इसके विपरीत वंशपरम्परासे वर्णव्यवस्था स्वीकार करने पर उक्त अनर्थोंकी प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।

'मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिङ्गधारणम्। बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते।।' (देवल / दत्तात्रेय), 'ब्राह्मणस्य तु चत्वारस्त्वाश्रमा विहिता: प्रभो। वर्णास्तान् नानुवर्तन्ते त्रयो भारतसत्तम।।' (महाभारत - शान्तिपर्व ६२.२), 'चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशाम्पते। भैक्ष्यचर्यास्वधीकार: प्रशस्त इह मोक्षिण:।' (महाभारत - शान्तिपर्व ६१.७), 'तस्माद् धर्मो विहितो ब्राह्मणस्य दम: शौचमार्जवं चापि राजन्। तथा विप्रस्याश्रमा: सर्व एव पुरा राजन् ब्राह्मणा वै निसृष्टा:।' (महाभारत - शान्तिपर्व ६३.७), 'चतुराश्रमधर्माश्च वेदधर्माश्च पार्थिव। ब्राह्मणेनानुगन्तव्या नान्यो विद्यात् कदाचन।।' (महाभारत - शान्तिपर्व ६५.९), 'ब्राह्मण: प्रव्रजेद् गृहात्' (मनुस्मृति ६.३८),'पारिव्रिज्याश्रम- प्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता' (विष्णुस्मृति ५.१३), 'ब्राह्मणस्याश्रमाश्चत्वार:,

क्षत्रियस्याद्यास्त्रय:, वैशस्य आद्यौ ' (वैखानसगृह्यसूत्र १.१०-१२) 'चत्वार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्य सदैव हि। अन्येषामन्त्यहीनाश्च क्षत्रविट्- शूद्रकर्मणाम्।। ...वर्तयन्त्योऽन्यथा दण्ड्या या वर्णाश्रमजातय: ' (शुक्रनीति ४.३४०, ३४२) आदि वचनोंके अनुसार यह सामान्य नियम है कि ब्राह्मण ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्न्यास - इन चारों आश्रमोंमें अधिकृत हैं तथा समस्त वेदधर्मके परिपालक और वेदविद्याविशारद तथा धर्मब्रह्मोपदेशक हैं; क्षत्रिय सन्न्यासातिरिक्त तीन आश्रमोंमें, वैश्य वानप्रस्थ तथा सन्न्यासातिरिक्त दो आश्रमोंमें तथा शूद्र केवल गृहस्थाश्रममें अधिकृत हैं। जीविकोपार्जनकी विधा तथा अपने - अपने चरित्रकी शिक्षामें सब अधिकृत हैं। अत एव सनातन प्रणालीके अनुसार शिक्षा, न्याय, रक्षा, कृषि - गोरक्ष्य - वाणिज्य, सेवा तथा वस्तु उत्पादक उद्योगमें अपेक्षित व्यक्तियोंकी न्यूनता तथा अधिकता असम्भव है।

ध्यान रहे, शास्त्रसम्मत वर्णभेदका भ्रम या विद्वेषमूलक उपहास और निराकरण अहितकर है। सनातन वर्णाश्रमधर्मके मूलमें सन्निहित दार्शनिकता, वैज्ञानिकता तथा व्यावहारिक धरातलपर उसकी उपयोगिताका परिज्ञान और उसमें आस्था सर्वहितकी भावनासे आवश्यक है।

सनातन वर्णव्यवस्थाके अनुसार शासनतन्त्रमें कोल, भील, किरात, शबरादि वनवासियोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका स्नेह, सौजन्य और सान्निध्य सदा सुलभ था। वे आर्थिक विपन्नता, उपेक्षा और तिरस्कारके पात्र बनाकर कभी नहीं रक्खे गये। वसिष्ठ, अगस्त्य, कण्व, शौनकादि ब्रह्मर्षि वनमें ही निवास करते थे। मनु, रघु, दिलीपादि राजर्षियोंने जीवनके चतुर्थचरणमें वनमें ही निवास किया था। वैश्य वयोवृद्ध हो जानेपर वानप्रस्थके विकल्परूप वृद्धाश्रममें वनमें ही निवास करते थे। ब्रह्मर्षियोंके गुरुकुल वनमें ही थे। जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके बालक विद्याध्ययन करते थे। अधिकांश सन्न्यासी वनमें निवास कर वानप्रस्थोंसे भिक्षा ग्रहणकर ध्याननिमग्न रहते थे। ये सब और इनके दर्शनार्थ आनेवाले राजा, महाराजा कोल, भील, किरात, शबरादिके पोषक थे। अधिकांश पौराणिक तीर्थ उन दिनों पर्वतमालाके मध्य और वनमें ही स्थित थे। अत: वनवासियोंको ग्राम और नगरनिवासियोंका सदा ही सौजन्य सुलभ था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके पर्वत्योहार तथा विविध संस्कारोंके पूरक शूद्रादि ही थे।

शूद्रादिको परम्पराप्राप्त जीविकाके साधन लघु उद्योग और कुटीर उद्योगको विकसित करनेके साधन समाज और शासनतन्त्रकी ओरसे घरमें ही सुलभ थे। भोजन, वस्त्र, आवास, यातायात, पर्व - उत्सव - त्योहार, शिक्षा, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादिकी समुचित व्यवस्थाके लिए धनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक विपन्नतासे व्यक्ति तथा समाजको सुदूर रखनेकी भावनासे सनातनवर्णाश्रमव्यवस्था वरदान है।

चरित्रनिर्माण और नैतिकताकी शिक्षा भूमण्डलके सब मनुष्य ब्रह्मावर्तादिनिवासी भारतके अग्रजन्मा (अग्रज) - ब्राह्मणोंसे ग्रहण करते थे । -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:।।

(मनुस्मृति २. २०)

दिव्यशक्तिप्राप्त ज्ञानवृद्ध क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रीसे भी लोकगुर कुलीन ब्राह्मण शिक्षा प्राप्त करते ही रहे हैं। प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल, उद्दालक नामक पूजनीय ब्राह्मणोंने केकयकुमार राजा

अश्वपतिसे वैश्वानरविद्याका पूर्णरूपसे उपदेश प्राप्त किया (छान्दोग्योपनिषत् ५.११)। ब्राह्मण गार्ग्यने प्राणविद्याका समग्र उपदेश क्षत्रिय अजातशत्रुसे प्राप्त किया (बृहदारण्यक २.१)। श्रीव्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीको अपने यजमान मिथिलानरेश जनकके समीप प्रवृत्ति और निवृत्तिके रहस्यको जाननेके लिये भेजा (महाभारत – शान्तिपर्व – अध्याय ३२५, ३२६)। विप्रवर जाजलिने वैश्य तुलाधारसे अहिंसा और समत्वका उपदेश प्राप्त किया (महाभारत –शान्तिपर्व अध्याय २६२,२६३)। द्विजश्रेष्ठ कौशिक ब्राह्मणने राजा जनकसे शासित मिथिलामें निवास करनेवाले धर्मव्याधसे धर्म और अध्यात्मका उपदेश प्राप्तकर आदरपूर्वक उनकी परिक्रमा की (महाभारत – वनपर्व अध्याय २०७ – २१६)। उन्होंने पतिव्रता स्त्रीसे भी उपदेश प्राप्त किया (महाभारत वनपर्व – अध्याय २०५)।

जब इस महायान्त्रिक युगमें भी सनातन वैदिक आर्य हिन्दुओंका सनातन परम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव – त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादिका विज्ञान विश्वस्तरपर सर्वोत्कृष्ट है; तब हमारी संस्कृतिके अनुसार स्वतन्त्र भारतमें भी शासनतन्त्र सुलभ न होना तथा सत्तालोलुप, अदूरदर्शी दिशाहीन शासनतन्त्रको सांस्कृतिक और सामाजिक किसी भी सङ्घटनके द्वारा चुनौती प्राप्त न होना हमारे अस्तित्व और आदर्शके विलोपका मुख्य कारण और भीषण अभिशाप है। अत: सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाजकी संरचना विश्वस्तरपर राजनीतिकी परिभाषा उद्घोषितकर उसे क्रियान्वित करनेके लिए स्वस्थ व्यूहरचना नितान्त अपेक्षित है।

पृथिवीमें गन्ध, जलमें रस, तेजमें रूप, वायुमें स्पर्श, आकाशमें शब्दके सदृश विश्वमें सन्निहित सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी सर्वधारकता, पोषकता, प्रकाशकता तथा आह्लादकता समुद्धृत वचनोंके अनुशीलनसे सिद्ध है। –

'पुण्यो गन्ध: पृथिव्यां'(गीता ७.९), 'रसोऽहमप्सु'(गीता ७.८), 'तेजश्चास्मि विभावसौ'(गीता ७.९), 'पवन: पवतामस्मि'(गीता १०.३१), 'शब्द: खे'(गीता ७.८), 'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। पुष्णामि चौषधी: सर्वा: सोमो भूत्वा रसात्मक:।।'(गीता १५.१३), 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:। प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।'(गीता १३.१४), 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।'(गीता १५.१२), 'द्यौ: सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधे:। वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मन:।। '(महाभारत – अनुशासनपर्व १४९.१३४) के अनुसार पृथ्वीमें पुण्य गन्ध, जलमें रस, अग्निमें तेज, पवनमें पवित्रता, आकाशमें शब्द पृथिव्यादिकी सत्ता और उपयोगिताके व्यापक हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रसहित पञ्चभूत त्रिभुवनके विधारक, परिपोषक और आह्लादक सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर हैं। जीवात्मतत्त्वकी धारकता; अत एव धर्मरूपता समुद्धृत वचनोंके अनुशीलनसे सिद्ध है। –

'इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।'(गीता ७.५), 'एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति'(कठोपनिषत् २.४.१४)

सर्व शरीरोंकी पाञ्च भौतिकता तथा आत्माकी सदृशता होनेपर भी सनातन शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमानुरूप अधिकारभेद समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग करते हुए निर्भेद आत्मस्थितिका एकमात्र अमोघ उपाय है।

अभिप्राय यह है कि धर्मोपदेशका प्रयोजन समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग तथा निर्भेद आत्मस्थिति है। वेदादिशास्त्रसम्मत सनातन धर्मके समादर तथा सेवनसे इस प्रयोजनकी सिद्धि सम्भव है, अन्यथा असम्भव है–

विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः।

पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।।

लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम् ।

यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व १६४.११,१२)

''यद्यपि सबके शरीर पाञ्च भौतिक हैं और सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा भी सर्वप्राणियोंमें सदृश ही है; तथापि समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग करता हुआ अनात्मवस्तुओंसे विविक्त और सर्वाधिष्ठानभूत आत्मामें व्यक्ति मन समाहित कर सके, तदर्थ बल और वेगका समुचित आधान वेदादि शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमोचित भेदको स्वीकार किये बिना सम्भव नहीं है। इस तथ्यका वैदिक वाङ्मयमें विस्तारपूर्वक वर्णन है।।''

शुद्ध्याशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु।

द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ।।

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ।

दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम्।।

(श्रीमद्भागवत ११. २१. ३,४)

''वस्तुओंके समान होनेपर भी शुद्धि - अशुद्धि, गुण - दोष और शुभ - अशुभका जो विधान किया जाता है, उसका अभिप्राय यह है कि पदार्थका ठीक - ठीक निरीक्षण - परीक्षण हो सके और यह योग्य है कि नहीं, ऐसा सन्देह उत्पन्न करके स्वाभाविक प्रवृत्तिको सङ्कुचित किया जा सके। उनके द्वारा धर्मसम्पादन किया जा सके, समाजका व्यवहार समुचित ढङ्गसे सम्पादित हो सके तथा व्यक्तिगत जीवनके निर्वाहमें भी सुविधा हो सके। इससे यह लाभ भी है कि मनुष्य अपनी वासनामूलक सहज प्रवृत्तियोंके द्वारा इनके जालमें न फँस कर शास्त्रानुसार अपने जीवनको नियन्त्रित और मनको वशमें करनेमें समर्थ होता है। इस आचारका मनु आदिका रूप धारण करके धर्मवहन करनेवाले कर्मजडोंके लिए मैंने (मुझ सर्वेश्वरने) ही उपदेश किया है।।"

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः।

आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः।।

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि।

धातुषूद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थसिद्धये।।

(श्रीमद्भागवत ११. २१. ५,६)

''पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशरूप पञ्चभूत ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त प्राणियोंके शरीरोंके उपादान हैं। इस तरह शरीरोंमें साम्य है। सब शरीरोंमें आत्मा भी एक ही है। ऐसा होनेपर भी वेदविनिर्मित

वर्णाश्रमादि पृथव् - पृथव् नामरूपका प्रयोजन काम और कर्मका सङ्कोच करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धि है। अभिप्राय यह है कि अकृतार्थ प्राणियोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करनेकी भावनासे वेदविनिर्मित अनादिसिद्ध वर्णाश्रमविभाग है।।"

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम।

गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम्।।

(श्रीमद्भागवत ११. २१. ७)

''देश, काल, यज्ञादि क्रिया, शाकल्यादि पदार्थ (द्रव्य), कर्ता, मन्त्र, यागादि कर्म, स्रुवादि करण और फलमें गुण - दोषका विधान उच्छृङ्खल प्रवृत्तिके निरोधकी भावनासे मैंने (मुझ सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरने) की है।।"

ध्यान रहे; सच्चिदानन्दस्वरूप सत्यं शिवं सुन्दरम् होनेके कारण ब्रह्मात्मतत्त्व ही एकमात्र निर्दोष और सम है। यह तथ्य 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म ' (श्रीमद्भगवद्गीता ५.१९) इस भगवद्वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है। अत एव भगवत्तत्त्वकी ही वरणीयता सिद्ध है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार यह सृष्टि सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी त्रिगुणात्मिका मायाशक्तिके द्वारसे अभिव्यक्ति है। अत एव जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरका अभिव्यञ्जक संस्थान है। अत: परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) क्रमसे इसका वरण और अतिक्रम सम्भव है।

विषय, करण, सुर, जीव और शिवमें चेतनाका उत्तरोत्तर उत्कर्ष परिलक्षित है। तद्वत् पृथिव्यादि पञ्चभूत, स्थावर और जङ्गम जगत् में चेतनाका उत्तरोत्तर उत्कर्ष परिलक्षित है। तद्वत् मनुष्य, मनुष्य गन्धर्व, देवगन्धर्व, पितृवर्ग, आजानजदेव, कर्मदेव, देव, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति, ब्रह्मा और विष्णुमें चेतना तथा आनन्दका उत्तरोत्तर उत्कर्ष परिलक्षित है। इस प्रकार तामससर्गकी अपेक्षा राजससर्गका और राजससर्गकी अपेक्षा सात्त्विकसर्गका अधिक महत्त्व है। त्रिविध सर्गकी परार्थता भी सिद्ध है। अत एव ''यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत् तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।। अथवा बहुनैतेन विं ज्ञातेन तवार्जुन। विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।'' (श्रीमद्भगवद्गीता १०. ४१, ४२) के अनुसार भगवान् की दिव्य अभिव्यक्तियोंकी विभूति संज्ञा है। विभूतिचिन्तनके फलस्वरूप सुलभ दिव्यजीवनकी समुपलब्धिके अनन्तर विभूतिसारसर्वस्व सर्वाश्रय एकमात्र ब्रह्मात्मतत्त्वकी वरणीयता सिद्ध है।

''पादचतुष्टयात्मवं ब्रह्म। तत्रैकमविद्यापादम्। पादत्रयममृतं भवति। ....पादोऽस्य विश्वा भूतानि। त्रिपादस्यामृतं दिवि।'' (त्रिपाद्विभूतिमहानारातणोपनिषत् - पूर्वकाण्ड ४), ''अविद्यापाद: प्रथम: पादो विद्यापादो द्वितीय:, आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीय पादस्तुरीय इति। मूलाविद्या प्रथमपादे नान्यत्र।'' (त्रिपाद्विभूतिमहानारातणोपनिषत् - पूर्वकाण्ड १) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जीवार्था सृष्टि अविद्यापाद है। विद्याप्रभव भगवान् की आत्मार्था सृष्टिके विद्यापाद और आनन्दपाद दो प्रभेद हैं। भगवान् स्वयं तुरीयस्वरूप हैं। ''अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।। आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्। उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्पर:।।'' (सरस्वतीरहस्योपनिनषत् २३, २४) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि नामरूपात्मक जगत् का उपयोग तथा विनियोग अस्ति - भाति - प्रियसंज्ञक सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका आत्मरूपसे वरण करनेंमें सन्निहित है।

''आत्मा देशश्च कालश्चाप्युपाया: कृत्यमेव च।

सहाया: कारणं चैव षड्वर्गो नीतिज: स्मृत:।।''

(महाभारत - शान्तिपर्व ५९.३२)

''आत्मा, देश, काल, उपाय, कृत्य तथा सहाय - नामक षड्वर्ग नीतिद्वारा सञ्चालित होनेपर उन्नतिके कारण होते हैं। अभिप्राय यह है कि देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्त:करण तथा वासनाबीज अज्ञान-समवेत आत्मा, प्राची आदि दिव्, काशी आदि क्षेत्ररूप देश, भूत - भविष्यत् - वर्तमान तथा प्रात: - मध्याह्न - सायम् आदि काल, कार्यसाधक प्रकाररूप उपाय, देश - काल - पात्रानुरूप कार्यविशेषरूप कृत्य एवम् द्रव्य, आचार्य, मन्त्री, पत्नी, परिकरादि सहायकका उपयोग, प्रयोग, विनियोग कर्मसिद्धिके षड्वर्ग हैं।"

किसी भी कार्यका उत्पत्ति तथा स्थितिस्थानरूप उपादान उसका देश है; तद्वत् किसी भी कार्यका लयस्थानरूप उपादान उसका काल है। जब सन्निकट निर्विशेषरूप उपादान अपने सन्निकट सविशेषरूप कार्यके विशेष गुणको ग्रस लेता है, तब ग्रस्तगुण वह कार्य कारणभावापन्न हो जाता है। अत: किसी भी कार्यका उपादानरूप कारण उसका काल मान्य है। यथा; जल पृथ्वीके विशेष गुण गन्धका जब अपहरण कर लेता है, तब पृथ्वी जल हो जाती है। इसी प्रकार जब जलके विशेष गुण रसका तेज अपहरण कर लेता है, तब जल तेज हो जाता है। जब वायु तेजके विशेष गुण रूपका अपहरण कर लेता है, तब तेज वायु हो जाता है। वायुके विशेष गुण स्पर्शका जब आकाश अपहरण कर लेता है, तब वायु आकाश हो जाता है। 'तावदाकाशसङ्कल्पो यावच्छब्द: प्रवर्तते।। नि:शब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मा समीयते।' (नादबिन्दूपनिषत् ४७,४८)के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि शब्दातीत ब्रह्म है और शब्दपर्यन्त आकाश है। अत: आकाश और ब्रह्मके मध्यवर्ती अहङ्कार तथा महत्तत्त्वकी आकाशरूपता सिद्ध है। आकाशके विशेष गुण वैखरी वाव् का जब अहङ्कार अपहरण कर लेता है, तब आकाश अहङ्कार हो जाता है। अहङ्कारके विशेष गुण मध्यमा वाव् का जब महत् अपहरण कर लेता है, तब अहङ्कार महत् हो जाता है। महत् के विशेष गुण पश्यन्ती वाव् का जब अव्याकृत अपहरण कर लेता है, तब महत् अव्याकृत हो जाता है। अव्याकृतके विशेष गुण परा वाव् का जब परब्रह्म अपहरण कर लेता है, तब अव्याकृत परब्रह्म होकर अवशिष्ट रहता है। (श्रीमद्भागवत १२. ४, सुबालोपनिषत्)

ध्यान रहे; कार्य चाहे लघु हो या गुरु, उसकी सिद्धिके एक ही साधक हेतु नहीं हुआ करता। जो किसी कार्य या प्रयोजनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कला जानता है, वही कार्य - साधनमें समर्थ हो सकता है। -

न ह्येक: साधको हेतु: स्वल्पस्यापीह कर्मण:।

यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने।।

(वाल्मीकीय रामायण - सुन्दरकाण्ड ४१.६)

कार्यकरणसङ्घातात्मक शरीररूप अधिष्ठानात्मक आश्रय, साधिष्ठान साभास बुद्धिसंज्ञक विज्ञानरूप कर्त्ता, ज्ञानेन्द्रिय - कर्मेन्द्रियसहित मनोरूप भिन्न - भिन्न विविध करण, कार्यसिद्धिके अनुरूप करणगत विविध पृथव् चेष्टा तथा देवानुग्रहसहित अनुकूल प्रारब्ध - संज्ञक पाँच कार्यसाधक साङ्ख्यासम्मत अभ्यन्तर हेतु होते हैं। तद्वत् पृथ्वी, सहयोगी प्राणी, विविध उपकरण, कार्यसिद्धिके अनुरूप उपकरणगत विविध पृथव् चेष्टा तथा

देवानुग्रहसहित अनुकूल प्रारब्ध - संज्ञक पाँच कार्यसाधक साङ्ख्यासम्मत बाह्य हेतु होते हैं।-

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।

साङ्ख्यो कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।।

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।

विविधाश्च पृथवचेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.१३,१४)

कर्मका फल होगा या नहीं, इस संशयमें पड़े हुए मनुष्य अर्थसिद्धिसे वञ्चित रह जाते हैं और जो संशयरहित हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होती है। कर्मपरायण तथा संशयरहित धीर मनुष्य निश्चय ही कहीं बिरले देखे जाते हैं-

अनर्थाः संशयावस्थाः सिद्ध्यान्ते मुक्तसंशयाः।

धीरा नराः कर्मरता ननु निःसंशयाः ववचित्।।

(महाभारत - वनपर्व ३२.४३)

मनुष्य कभी अपना अनादर न करे - स्वयंको हीन न समझे। जो स्वयं ही अपना अनादर करता है, उसे उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्ति नहीं होती-

न त्वेवात्मावमन्तव्यः पुरुषेण कदाचन।

न ह्यात्मपरिभूतस्य भूतिर्भवति शोभना।।

(महाभारत - वनपर्व ३२.५८)

अनन्य भगवद्भक्त तथा तत्त्वज्ञ मनीषी सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरसंज्ञक ब्रह्मको यज्ञसम्पादक क्रिया, कारकरूप सर्व हेतु तथा फल समझकर उक्त हेतुओंका उपयोग करनेमें कुशल तथा परम फलरूप परमात्माको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। -

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४.२४)

''ब्रह्मदृष्टिसम्पन्न साधकद्वारा सम्पन्न यज्ञमें अर्पण अर्थात् स्रुवादि ब्रह्म है, हवनीय द्रव्य ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, आहुति ब्रह्म है और उस ब्रह्मात्मक कर्मके सम्पादनमें समाहित तथा संलग्न कर्त्ता स्वयं भी ब्रह्म ही है; अत एव उसे समुपलब्ध होने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।।''

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।

द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः।।

(श्रीमद्भागवत १२.११.३१)

‘‘शौनकजी! एक भगवान् ही मायाके द्वारसे काल, देश, यज्ञादि क्रिया, कर्ता, स्रुवादि करण, यागादि कर्म, मन्त्र, शाकल्यादि द्रव्य और फलरूपसे नौ प्रकारके कहे जाते हैं।।’’

ध्यान रहे, जो प्रधान कार्यके सम्पन्न हो जानेपर दूसरे बहुत–से कार्योंको भी सिद्ध कर लेता है और पहलेके प्रधान कार्यमें बाधा नहीं आने देता, वही कार्यको सुचारुरूपसे कर सकता है–

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्।

पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति।।

(वाल्मीकीय रामायण - सुन्दरकाण्ड ४१.५)

सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरके द्वारा सृष्ट आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वीसहित पञ्चभूतात्मक बाह्य जगत् का तथा जीवाधिष्ठित देवानुग्रहप्राप्त देहेन्द्रिय प्राणान्त:करणरूप जीवनका अभ्युदय और नि:श्रेयससंज्ञक भोगापवर्गकी सिद्धिके लिए अर्थात् अर्थ, काम, धर्म और मोक्षसंज्ञक पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिए उपयोग और विनियोग कर्त्तव्य है–

बुद्धीन्द्रियमन: प्राणान् जनानामसृजत् प्रभु:।

मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च।।

(श्रीमद्भागवत १०.८७.२)

ग्रह, भेषज, जल, पवन तथा पट आदि सुयोग प्राप्त कर दु:खापहारक सुखकारक सुवस्तु होते हैं। –

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।

होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।।

(रामचरितमानस ७ . क)

‘‘द्वे वाव खल्वेते ब्रह्मज्योतिषी रूपके शान्तमेवं समृद्धं चैकम् ।’’ (मैत्रायण्युपनिषत् ६.३६),‘‘द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च’’ (बृहदारण्यकोपनिषत् २.३.१, मैत्रायण्युपनिषत् ५.३) के अनुसार सोपाधिक समृद्ध मूर्त्त भूतात्मक सिद्ध ब्रह्मके समाश्रित रहते हुए विधियोगसे कर्मोपासनाके अमोघ प्रभावसे अन्त:करणको शुद्ध और समाहित करनेके अनन्तर शान्तसंज्ञक अमूर्त्त ब्रह्ममें आत्मबुद्धिकी परिपववता ज्ञानयोगके द्वारा कर्त्तव्य है। –

‘‘स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै:।

महeयज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनु:।।’’

(मनुस्मृति २.२८)

‘‘वेदाध्ययनसे, मधु – मांसादिके त्यागरूप व्रतसे, प्रात: – सायं कालीन होमसे, त्रैविद्य – विज्ञानसे, ब्रह्मचर्यावस्थामें देवर्षि – पितृ – तर्पणादिसे, गृहस्थाश्रममें पुत्रोत्पादनसे, ब्रह्मयज्ञादि पञ्च महायज्ञोंसे और ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंसे ब्रह्मप्राप्तिके योग्य देहेन्द्रियप्राणान्त:करणकी स्फूर्ति होती है।।’’

‘‘गर्भहोमैर्जातकर्मनामचौलोपनायनै:।

स्वाध्यायैस्तद्व्रतैश्चैव विवाहस्नातकव्रतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।''

(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दा०)

''गर्भाधानसंस्कारमें किये जानेवाले हवनके द्वारा और जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, वेदोक्त व्रतोंके पालन, स्नातकके पालनीय व्रत, विवाह, पञ्च महायज्ञोंके अनुष्ठान तथा अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा - इस शरीरको परब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य बनाया जाता है।।''

''तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति ' (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.४.२२)

''इस औपनिषद आत्माको ब्राह्मण वेदोंके स्वाध्याय, यज्ञ, दान और निष्काम तपके द्वारा जाननेकी इच्छा करते हैं। इसीको जानकर मुनि होता है।।''

सम्यक् सङ्कल्पसम्बन्धात् सम्यक् चेन्द्रियनिग्रहात्।

सम्यग्व्रतविशेषाच्च सम्यक् च गुरुसेवनात्।।

सम्यगाहारयोगाच्च सम्यक् चाध्ययनागमात्।

सम्यवकर्मोपसन्न्यासात् सम्यविचत्तनिरोधनात्।।

एवं कर्माणि कुर्वन्ति संसारविजिगीषवः।

(महाभारत -वनपर्व २. ७८-७९.१/२)

''सम्यक् सङ्कल्पयोगसे, भलीभाँति इन्द्रियनिग्रहसे, अहिंसादि व्रतोंका भली - भाँति पालन करनेसे, विधिवत् गुरुकी सेवा करनेसे, यथायोग्य योगसाधनोपयोगी आहार करनेसे, वेदादिका विधिवत् अध्ययन करनेसे, कर्मोंका भली - भाँति भगवत्समर्पण करनेसे और चित्तका भली प्रकार निरोध करनेसे मनुष्य परम कल्याणको प्राप्त होता है। संसारको जीतनेकी इच्छावाले बुद्धिमान् इसी प्रकार कर्म करते हैं।।"

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्याते।

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते।।

(मनुस्मृति ६.७४)

''सम्यग्दर्शनसम्पन्न कर्मोंसे निबद्ध नहीं होता; परन्तु सम्यग्दर्शनविहीन संसारको प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म - मृत्युरूप संसृतिचक्रसे मुक्त नहीं होता।।"

सम्यङ्गिदर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा।

गुणतत्त्वान्यथेतानि निर्गुणोऽन्यस्तथा भवेत्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३०६. ४६)

''प्रकृति तथा पुरुषका प्रत्यक्ष - दर्शन ही सम्यग्दर्शन है। ये जो गुणमय तत्त्व हैं, इनसे भिन्न पुरुष निर्गुण है।।"

न त्वेवं वर्तमानानामावृत्तिर्विद्यते पुन:।

विद्यतेऽक्षरभावत्वादपरं परमव्ययम्।।

(महाभारत – शान्तिपर्व ३०६. ४७)

''इस दर्शनके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेवालोंकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, कारण यह है कि वे अविनाशी – अक्षरभावको प्राप्त हो जाते हैं। अत एव परमात्मस्वरूप निर्विकार परब्रह्मरूपमें ही उनकी स्थिति होती है।।"

पश्यैरन्यैकमतयो न सम्यक् तेषु दर्शनम्।

ते व्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुन: पुनररिन्दम।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३०६. ४८)

''शत्रुदमन नरेश ! जिनकी बुद्धि नानात्वका दर्शन करती है, उन्हें सम्यग्ज्ञानकी समुपलब्धि नहीं होती। ऐसे व्यक्तियोंको पुन: – पुन: देह – धारण करना पड़ता है।।"

सर्व प्राणियोंपर दया, क्षमा, दु:खसे सन्तप्त प्राणीकी रक्षा, सबके प्रति ईर्ष्याका अभाव, बाह्याभ्यन्तर शुद्धि, अनायास सुलभ स्वभावसिद्ध कार्यका माङ्गलिक आचार – विचारसे सम्पादन, न्यायपूर्वक उपार्जित सम्पत्तिसे आर्त्तोंकी सेवामें कृपणताका परिचय न देना तथा परद्रव्य और परस्त्रीमें सदा अस्पृहा – पुराणज्ञ पुरुषोंद्वारा प्रतिपादित ये आठ प्रकारके आत्मगुण वेदज्ञ मनीषियोंमें प्रधानरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं। यही ज्ञानयोगका साधक क्रियायोग है।–

''अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिता:।

दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु।।

अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजा:।

अनायासेषु कार्येषु मङ्गलाचारसेवनम्।।

न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च।

तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा।।

अष्टावात्मगुणा: प्रोक्ता: पुराणस्य तु कोविदै:।

अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधक:।।

(मत्स्यपुराण ५२.८ –११)

वस्तुके अस्तित्वका साधक तथा उसकी उपयोगिताका उद्दीपक धर्म है। अभीष्ट वस्तु अर्थ है। अभिमतके सेवनसे सुलभ सुख काम है। धर्मविहीन अर्थका पर्यवसान अनर्थ है । धर्मविहीन कामका पर्यवसान परिताप है। धर्मसम्मत अर्थका पर्यवसान स्वस्थ – सुपुष्ट – अनासक्त सार्थक जीवन है । धर्मसम्मत कामका पर्यवसान स्थिर आह्लाद है। सर्वधारक सर्व साक्षी निर्दोष और सम आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है। भास्य (दृश्य)– संसर्ग – विविक्त ब्रह्मकी निरावरणस्फूर्ति मोक्ष है। मोक्षमें प्रयुक्त तथा विनियुक्त जीवनकी सार्थकता

सुनिश्चित है।

व्यक्ति अर्थात् प्राणीमें सदा विद्यमानताकी अर्थात् अखण्ड अस्तित्वकी, सबको जाननेकी अर्थात् अखण्ड विज्ञानकी और सदा सुखकी अर्थात् अखण्ड आनन्दकी निसर्गसिद्ध भावना है। परन्तु इसकी सम्पूर्ति तभी सम्भव है, जब वह स्वयं अखण्ड सत्, अखण्ड चित् और अखण्ड आनन्द सिद्ध हो। आरोपित अस्तित्व, बोध और आनन्दका पक्षधर प्राणी अर्थात् बाह्य आराम, बहिर्ज्योति तथा बहि: सुखका रसिक व्यक्ति मृत्यु, मूर्खता और दु:खसे आक्रान्त रहता है। सुषुप्ति (प्रगाढ़निद्राकी स्थिति) में अनित्य, जड और दु:खप्रद शरीरादि – सापेक्ष बाह्य अस्तित्व, बोध और सुखकी मान्यता निरस्त हो जानेके कारण किसीको मृत्यु, मूर्खता औार दु:खका भय नहीं प्राप्त होता। सुषुप्त प्राणीको भूख – प्यास, शीत – उष्ण, सुख – दु:खादि प्राप्ति तथा व्याप्ति नहीं होती। अत: प्रमादसिद्ध सत्ता, चित्ता और प्रियताका निरसन कर देनेपर तथा इनके बीजभूत स्वयंकी सच्चिदानन्दरूपताके अबोधका अपलाप कर देनेपर स्वरूपसिद्ध गुणधर्मोंका आविर्भाव होता है। अभिप्राय यह है कि अन्त: –आराम, अन्तर्ज्योति और अन्त:सुखकी स्फूर्ति होती है। अन्त: – आराम, अन्तर्ज्याति और अन्त:सुखकी स्फूर्तिमें ही सबके जीवनकी सार्थकता सन्निहित है। अत : तदनुरूप जीवनकी संरचना अपेक्षित है –

योऽन्त:सुखोऽन्तरारामस्तथान्तज्योतिरेव य:।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२४)

''जो अन्त:सुख, अन्त: आराम और अन्तर्ज्योति ही है, वह योगी जीवभावविनिर्मुक्त ब्रह्मनिर्वाणसम्प्राप्त है।।''

विकास - विमर्श

८. सृष्टिचक्र - अनुवर्तन - अतिक्रम - प्रकल्प

सृष्टिचक्रके अनुवर्तन और अतिक्रमणके लिए गीतोक्त यज्ञविद्याका यथावत् परिज्ञान आवश्यक है। शब्दब्रह्मात्मक वेदके परम तात्पर्यभूत चिद्व्यामात्मक अक्षरसंज्ञक परब्रह्मसे आकाशकल्प शब्दब्रह्मात्मक वेदका प्रादुर्भाव होता है। वेदसे उसके अवान्तरतात्पर्यभूत धर्मख्यापक वायुकल्प कर्मका उद्भव होता है। कर्मसे कर्त्ताके अन्त:करणमें फलोपलब्धिपर्यन्त सन्निहित अपूर्व (अदृष्ट - प्रारब्ध - दैव - भाग्य) संज्ञक अग्निकल्प यज्ञका समुद्भव होता है। यज्ञसे पर्जन्य और पर्जन्यसे पार्थिव अन्नका प्रादुर्भाव होता है। अन्नसे जीवाभिव्यञ्जक सप्तधातुमय प्राणियोंके शरीरका प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार प्रवृत्तिदशामें वेदोंका विनियोग जीवोंके पुनर्भवमें होता है। जन्म लेने और जन्म देनेकी योग्यताकी परिपुष्टिमें अपरा वेदविद्याका पर्यवसान सृष्टिचक्रके अनुवर्तनकी विधा है।

कर्त्ता जब अपने कर्मका उपयोग तथा विनियोग कर्मके उद्गमस्थान वेदोंके परम तात्पर्य ब्रह्मकी क्रिया - कारक - फलरूपताके बोधके अमोघ प्रभावसे ब्रह्मार्पणबुद्धिसे करता है, तब वह ब्रह्मपरिमार्गणके अनुरूप बल तथा वेगसे समन्वित चित्तके द्वारा सर्वानुगत सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अद्वितीय आत्मरूपताका विज्ञान प्राप्तकर कृतार्थ होता है। इस प्रकार जन्मकर्मके आत्यन्तिक उच्छेदमें परा वेदविद्याका पर्यवसान सृष्टिचक्रके अतिक्रमकी विधा है। -

अन्नाद्भवान्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिाष्ठितम् ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ३. १४,१५)

''अन्न स्थावर- जङ्गम प्राणियोंका परिपोषक तथा अभिव्यञ्जक संस्थान है। जङ्गम प्राणियोंमें मनुष्यादि शरीर क्रमश: अन्नपरिपाक रस, शोणित, मांस, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र -संज्ञक अष्ट धातुमय और त्वव्, मांस, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा - नामक षाट्कौशिक (छह कोशोंवाला) है। अत: अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है। वृष्टि तदर्थ अदृष्टसंज्ञक यज्ञसे होती है। देवता, हवनीय द्रव्य, मन्त्र, विधि, सूत्र, ऋत्विव्, यजमान, अन्नदान, दक्षिणा एवम् मनोयोगके संयोगसे निष्पन्न यज्ञ कर्मविशेषसे समुद्भूत है। कर्म ऋव्, यजु:, सामसंज्ञक शब्दब्रह्मात्मक वेदसे उत्पन्न होता है, ऐसा समझो। शब्दब्रह्मात्मक वेद अक्षरसंज्ञक परब्रह्मसे समुद्भूत है। अत एव वेदविहित कर्मसमुद्भूत यज्ञमें सदा ही अक्षरसंज्ञक ब्रह्माधिष्ठित शब्दब्रह्मात्मक वेद सन्निहित है।।''

''यस्मिन्विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।'' (ब्रह्मविद्योपनिषत् १३)

''ऋग्वेद: सामवेदश्च यजुर्वेदोऽप्यथर्वण:।।

मत्त: प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च।''

(महाभारत - वनपर्व १८९.१४.१४.१/२)

''ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद - ये मुझसे ही प्रकट होते हैं और मुझमें ही लीन हो जाते हैं।।''

यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४६)

''उक्तरीतिसे प्राणियोंकी समुत्पत्ति और सकल व्यवहृति जिस शब्दब्रह्मके उद्भव और लयस्थान अक्षरसंज्ञक परब्रह्मसे सम्भव है, जिससे नाम - रूप - क्रिया - कारक - फलात्मक जगत् व्याप्त है, अविद्या - काम - कर्मके फलस्वरूप निबन्धनको प्राप्त मानव उसीको वरणीय, कमनीय समझकर तदर्थ स्वकर्मोंके द्वारा उसकी समर्चाकर कर्मबन्धसे अतिक्रान्त उसकी समुपलब्धिरूपा सिद्धि लाभ करता है।।''

''अग्नौ प्रास्ताऽऽहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत: प्रजा:।।"

(मैत्रायण्युपनिषत् ६. ३७)

''अग्निमें विधिवत् समर्पित आहुति आदित्यभावापन्न होती है। आदित्यसे वर्षा होती है। वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है। अन्नपरिपाकसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है।।''

पुरा सृष्टानि भूतानि पीड्यान्ते क्षुधया भृशम्।

ततोऽनुकम्पया तेषां सविता स्वपिता यथा।।

गत्वोत्तराणां तेजो रसानुद्धृत्य रश्मिभि:।

दक्षिणायनमावृत्तो महीं निविशते रविः।।

(महाभारत - वनपर्व ३.५,६)

''महर्षि धौम्यने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा - सृष्टिके प्रारम्भमें जब सब प्राणी भूखसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, तब भगवान् सूर्यने पिताकी भाँति उन सबपर कृपा करके उत्तरायणमें जाकर अपनी किरणोंसे भूमण्डलमें व्याप्त जलाशयनिष्ठ रस (जल) खींचा और दक्षिणायनमें लौटाकर पृथ्वीको उस रससे आप्लावित किया।।''

क्षेत्रभूते ततस्तस्मिन्नोषधीरोषधीपतिः।

दिवस्तेजः समुद्धृत्य जनयामास वारिणा।।

(महाभारत - वनपर्व ३. ७)

''इस प्रकार जब सम्पूर्ण भूमण्डलमें क्षेत्र (कृषियोग्य भूमि) तैयार हो गया, तब ओषधियोंके स्वामी चन्द्रमाने अन्तरिक्षमें मेघमण्डलके रूपमें परिणत हुए सूर्यके तेजको समुद्धृत करके उसके द्वारा बरसाये हुए जलसे अन्नादि ओषधियोंको समुत्पन्न किया।।''

निषिक्तश्चन्द्रतेजोभिः स्वयोनौ निर्गते रविः।

ओषध्यः षड्रसा मेध्यास्तदन्नं प्राणिनां भुवि।।

(महाभारत - वनपर्व ३. ८)

''चन्द्रमाकी किरणोंसे अभिषिक्त हुआ सूर्य जब अपनी प्रकृतिमें स्थित हो जाता है; तब मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय - संज्ञक छः प्रकारके रसोंसे युक्त पवित्र ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार उन ओषधियोंके द्वारसे वह सूर्य ही पृथ्वीमें अन्न होता है।।''

एवं भानुमयं ह्यन्नं भूतानां प्राणधारणम्।

पितैष सर्वभूतानां तस्मात् तं शरणं व्रज।।

(महाभारत - वनपर्व ३. ९)

''इस प्रकार सब जीवोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला अन्न सूर्यरूप ही है। भगवान् सूर्य ही समस्त प्राणियोंके पिता हैं; अतः तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।।''

इस प्रकार, कर्त्ता जब अपने कर्मका उपयोग तथा विनियोग लौकिक उत्कर्षके लिए करता है, तब अवरोहक्रमसे यज्ञ, पर्जन्य और अन्नके द्वारसे उसका पर्यवसान पुनर्भव प्राप्त करने तथा करानेमें होता है ।

कर्ता जब यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान स्वर्गादि लोकोंकी

समुपलब्धिके लिए करता है, तब प्रायणकालमें (देहत्यागके अव्यवहित पूर्व क्षणमें) द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक अर्थात् हवनीय वस्तुसारसर्वस्व पुण्यमय दिव्यदेहसे स्वर्गादि दिव्य लोकोंकी प्राप्तिमें उसके कर्मोका आंशिक विनियोग होता है। वह अग्निहोत्रसे स्वर्गको, अग्निष्टोमसे यमराज्यको, उक्थसे सोमराज्यको, षोडशीसे सूर्यराज्यको, अतिरात्रसे स्वाराज्यको और आसहस्रसम्वत्सरान्त क्रतुसे प्राजापत्यको

प्राप्त करता है।-

"अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामो यमराज्यमग्निष्टोमेनाभि-जयति सोमराज्यमुवथेन सूर्यराज्यं षोडशिना स्वाराज्यमतिरात्रेण प्राजापत्यमासहस्रसम्वत्सरान्तव्रतुनेति।" (मैत्रायण्युपनिषत् ६. ३६)

जब कर्त्ता कर्मके मूल शब्दब्रह्मात्मक वेदोंके उद्भवस्थान और वेदैकसमधिगम्य अक्षरसंज्ञक अच्युत परब्रह्मके लिए ही यज्ञादि कर्मोंका उपयोग और विनियोग करता है, तब उसके पुनर्भवका अन्त होता है। जब कर्मासक्ति, फलासक्ति, नानात्वबुद्धि और अहङ्कृतिको शिथिलकर धृत्युत्साहपूर्वक भगवदर्थ सूर्य तथा सोमात्मक तेजोमय रसात्मक हवनीय द्रव्यका आरुरुक्षु मुमुक्षु अग्निमें विधिवत् निक्षेप करता है, तब अग्नियोगसे हविसारसर्वस्व आहुति रविमण्डलमें सन्निहित होती है। रविमण्डलसे तादात्म्यापन्न सोममण्डल है। सोममण्डलमें सन्निहित वह्निमण्डल है। वह्निमण्डलमें उद्दीप्त सत्त्वगुण सर्वेश्वर अच्युतका अभिव्यञ्जक संस्थान है। इस प्रकार; अग्नि, रवि, सोम, वह्नि, सत्त्वमण्डलक्रमसे अच्युत सर्वेश्वरको सम्प्राप्त आहुति साधकेन्द्रको औदर्याग्निसे प्राणाग्नि, प्राणाग्निसे मनोरूपाग्नि, मनोमयाग्निसे बुद्धिमयाग्नि, बुद्धिरूप विज्ञानमयाग्निसे चित्तमयाग्नि तथा चित्तमयाग्निसे वासुदेवाग्निमें सन्निहित करती है। सूर्योऽग्निकी शरीरमें एकऋषि संज्ञा है। वह मूर्धामें स्थित है। दर्शनाग्निकी शरीरमें आहवनीयसंज्ञा है। वह मुखमें सन्निहित है। जराप्रणुदा शारीरोऽग्निकी शरीरमें दक्षिणाग्निसंज्ञा है। वह हृदयमें सन्निहित है। कोष्ठाग्निकी शरीरमें गार्हपत्यसंज्ञा है। वह नाभिमें स्थित है। सोमाग्निकी शरीरमें सर्वप्रायश्चित्तीय संज्ञा है। वह प्रजननकर्मा लिङ्गमें स्थित है।-

"रविमध्ये स्थितः सोमः सोममध्ये हुताशनः।

तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः॥"

(मैत्रायण्युपनिषत् ६.३८)

जलके द्वारा परिपोषित आपोमय प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समानकी सोमरूपता सिद्ध है (छान्दोग्योपनिषत् ६.५.४)। तद्वत् सूर्यके द्वारा उद्दीप्त (प्रश्नोपनिषत् ३.८) प्राणकी अग्निरूपता सिद्ध है। अत एव अग्नि और सोमस्वरूप प्राणकी परमात्मरूपता सिद्ध है। इस तथ्यके अधिगमके फलस्वरूप सर्वभूतहृदय साधकेन्द्रको सर्वभूतोंसे अभय प्राप्त रहता है-

प्राणो अग्निः परमात्मा पञ्चवायुभिरावृतः।

अभयं सर्व भूतेभ्यो न मे भीतिः कदाचन॥

(प्राणाग्निहोत्रोपनिषत् १)

जल अग्नि और सोमका अभिव्यक्तिस्थल है। अतः दोनों एकयोनि हैं और एक - दूसरेके आह्लादक तथा लोकधारक हैं। 'आकाशादभवद् वारि सलिलादग्निमारुतौ। अग्निमारुतसंयोगात् ततः समभवन् मही॥' (महाभारत - शान्तिपर्व १८२.१४) के अनुसार आकाशसे जलकी,जलसे अग्नि और वायुकी तथा अग्नि और वायुके संयोगसे पृथ्वीकी समुत्पत्ति सिद्ध है। अग्नि देवोंका मुख है। अग्नि सोमसे संयुक्त होनेके कारण एकरूपताको प्राप्त है। -

'ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मवं जगत्।'

(रुद्रहृदयोपनिषत् ९)

'अग्नीषोमात्मवं विश्वं।..अग्नीषोमात्मवं जगत्।।'

(बृहज्जाबालोपनिषत् २.१,४)

अग्नि: सोमेन संयुक्त एकयोनित्वमागत:।

अग्नीषोमात्मवं तस्मात् कृत्स्नं सचराचरम्।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३४१.५०)

अपि हि पुराणे भवति एकयोन्यात्मकावग्नीषोमौ

देवाश्चाग्निमुखा इति एकयोनित्वाच्च परस्परमर्हन्ता

लोकान् धारयन्त इति।।(महाभारत - शान्तिपर्व ३४१.५१)

शिव – पार्वती, अग्नि – गङ्गा – मेरुके योगसे समुत्पन्न सुवर्णकी अग्नीषोमात्मकता सिद्ध है –

'अग्नीषोमात्मकमिदं सुवर्णं विद्धि निश्चये।।'

(महाभारत - अनुसासनपर्व ८४.४६)

सृष्टिसंरचना, सृष्टिसञ्चालन, सृष्टिसंहरण यज्ञविज्ञान है। सूर्यरूप समष्टि अग्निमें महा सोमार्णवकी सोमाधारा अहर्निश पड़ रही है। यही कारण है कि सूर्यका प्रकाश सदा अक्षीण बना रहता है। विश्व अग्नि तथा सोमात्मक है। तेजसे जलका उद्भव होता है। जल अग्निका अभिव्यञ्जक संस्थान है। चन्द्रगत शीतलता तथा आह्लादकताके कारण चन्द्रमाकी आपोमयता सिद्ध है। चन्द्रगत प्रकाशशीलताके कारण चन्द्रमाकी तेजोमयता सिद्ध है। अग्नि वाव् के और चन्द्र मनके अधिदैव हैं। वाव् से अभिधानात्मक नामकी और मनसे अभिधेयात्मक रूपकी अभिव्यक्ति सुनिश्चित है। इस प्रकार नामरूपात्मक जगत् की अग्नि तथा सोमात्मकता सिद्ध है। अत एव सम्पूर्ण विश्वकी अग्नीषोमात्मकता तथा वागर्थात्मकता सिद्ध है। शक्तिमान् शिवकी वह्निरूपता तथा शक्तिस्वरूपा उमाकी सोमरूपता सिद्ध है। अत: सम्पूर्ण विश्वकी अग्नीषोमात्मकता, वागर्थात्मकता तथा शिवशक्तिमयता सिद्ध है। अन्त:संहार और बहि:शान्ति, अन्त: शान्ति और बहि:संहार सृष्टिके अवलोकनकी दृष्टि है। शिवकी तेजोमयता अत एव विद्या नामक कलारूपता तथा शक्तिकी रसरूपता अत एव प्रतिष्ठा नामक कलारूपता सिद्ध है। तेजोवृत्तिकी सूर्यरूपता तथा अग्निरूपता सिद्ध है। रसवृत्तिकी सोमरूपता तथा जलरूपता सिद्ध है। विद्युदादिरूपसे तेजकी और मधुरादिरूपसे जलकी समुपलब्धि परिलक्षित है। अत एव चराचर जगत् तेजोमय तथा रसमय है। तेजोमय दुग्धसे घृतरूप अमृतकी उत्पत्ति होती है और अमृतस्वरूप घृतसे अग्निकी वृद्धि होती है। अत एव अग्नि और सोमको प्रदत्त आहुतियोंसे सृष्टिका पोषण होता है। शस्यसम्पत्ति हविष्यका उत्पादन करती है। वर्षा शस्यको बढ़ाती है। इस प्रकार वर्षासे हविष्यका प्रादुर्भाव होता है। जिसके फलस्वरूप अग्नीषोमात्मक यह विश्व स्थित है। ऊर्ध्वमुख अग्निका प्रज्वलन सोमामृतपर्यन्त है। अधोमुख आपोमय सोमामृतका उच्छलन और आप्लावन अग्निपर्यन्त है। जिस प्रकार पृथ्वीके ऊपर जल और जलके ऊपर पृथ्वी है; उसी प्रकार शिवके ऊपर शक्ति और शक्तिके ऊपर शिव है।

भस्म दाहक अग्निका वीर्य है। अत: भस्मस्नान भवबन्धदाहक है। वह्निवीर्य भस्म है और सोमवीर्य सर्ग

है। प्रलयके बाद सर्ग तथा सर्गके बाद प्रलय है। शिववीर्य प्रलय तथा शक्तिवीर्य सर्ग है। अयोगयुक्तिसे सम्पादित प्रलयोत्तर सर्ग तथा सर्गोत्तर प्रलय सृष्टिचक्र है। योगयुक्तिसे भस्माप्लावन विद्या और आनन्दसर्ग है। योगयुक्तिसे भस्मसम्पादन आत्यन्तिक प्रलय विदेहकैवल्य तुरीयपद है। अविद्यापादके अन्तर्गत अग्नीषोमात्मक सर्गके अतिक्रमकी यह गुरुगम्य विधा है। विद्यापाद तथा आनन्दपादके अन्तर्गत अग्नीषोमात्मक लीलासर्गकी यह गुरुगम्य विधा है (शिवपुराण – वायवीयसंहिता – पूर्वखण्ड २८)।

तेजके सूर्य तथा अग्नि – संज्ञक दो प्रभेद हैं। तद्वत् रसशक्तिके सोम तथा अग्नि – संज्ञक दो प्रभेद हैं। अत एव अग्नि तेजोमय रसरूप है। वैद्युदादिरूप तेज मधुरादि रसमय है। यह चराचर विश्व तेजोमय और रसरूप है। अग्निसे अमृतकी निष्पत्ति होती है तथा अमृतसे अग्नितत्त्व उद्दीप्त होता है। अत एव चराचरकी अभिव्यक्तिमें हेतुभूता हविकी अग्नि और सोमात्मकता सिद्ध है। चन्द्र ऊर्ध्वशक्तिमय है और अनल अधोशक्तिमय है। यह विश्व दोनोंसे सदा सम्पुटित है। जब तक अग्नि अधोमुख सोमामृतसे संतृप्त रहता है; तब तक उसकी ऊर्ध्वमुखी अमृतमयी रसशक्ति सोमको संतृप्त करती है । यही कारण है कि अध:स्थित कालाग्निकी अमृतमयी रसशक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है। जबतक वह्निमें ऊर्ध्वमुख अमृतप्रेषणी शक्ति उद्दीप्त रहती है; तब तक वह पावन पावक रहता है। आधारशक्तिके द्वारा अवधृत यह कालाग्नि ऊर्ध्वगतिशील रहता है। तद्वत् सोम रश्मियोंके द्वारा निम्नगतिशील रहता है। इस प्रकार अग्नि तथा सोमकी शिव – शक्तिरूपता सिद्ध है। –

''द्विविधा तेजसो वृत्ति: सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका।।
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रस:।
तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्।।
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अत एव हवि: क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत्।।
ऊर्ध्वशक्तिमयं सोम अध: शक्तिमयोऽनल:।
ताभ्यां सम्पुटितस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत्।।
अग्नेरूर्ध्वं भवत्येषा यावत्सौम्यं परामृतम्।
यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यध:।।
अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा।
यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत्।।
आधारशक्त्यावधृत: कालाग्निरयमूर्ध्वग:।
तथैव निम्नग: सोम: शिवशक्तिपदास्पद:।।''

(बृहज्जाबालोपनिषत् २. २-८)

रुद्रके दक्षिणपार्श्वमें सूर्य, ब्रह्मा और आहवनीय, दक्षिण, गार्हपत्य तीनों अग्नि स्थित हैं। उनके वामपार्श्वमें उमादेवी, विष्णु और सोम स्थित हैं। अत एव अग्निकी सूर्य और ब्रह्मरूपताके सदृश शिवरूपता सिद्ध है तथा सोमकी विष्णुरूपताके तुल्य उमारूपता सिद्ध है। इस प्रकार सृष्टिकी शिवशक्तिरूपता चरितार्थ है। –

रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रविर्ब्रह्मा त्रयोऽग्नयः।।

वामपार्श्वे उमा देवी विष्णुः सोमोऽपि ते त्रयः।''

(रुद्रहृदयोपनिषत् ४-५)

ध्यान रहे; ''अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।" (मैत्रायण्युपनिषत् ६. ३७), ''रविमध्ये स्थितः सोमः सोममध्ये हुताशनः। तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः।।" (मैत्रायण्युपनिषत् ६.३८) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि अग्निसे ऊर्ध्व सूर्य है, सूर्यसे ऊर्ध्व सोम है, सोमस्थ अग्नि है। अतः सोम वह्निसम्पुटित है।

अग्निमें सोमकी आहुति पड़े बिना विश्वका निर्माण ही असम्भव है ।

अग्नीषोमाविदं सर्वमिति यश्चानुपश्यति।

न च संस्पृश्यते भावैरद्भुतैर्मुक्त एव सः।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २८८.३३)

''जो इस सम्पूर्ण जगत् को अग्नि और सोमरूप ही देखता है, वह मायाके राग – द्वेष, सुख – दुःखादि अद्भुत भाव स्पर्श नहीं कर सकते। वह सर्वथा मुक्त ही है।।''

इसी तरह जगत् की भोक्तृभोग्यमयता, ज्ञातृज्ञेयमयता तथा चितिचैत्यमयता सिद्ध है। भोक्तामें भोग्यकी, ज्ञातामें ज्ञेयकी, चितिमें चैत्य (दृश्य) की आहुति दिए बिना सृष्टिचक्रप्रवर्तन सर्वथा असम्भव है। कर्ममें अधिकृत होता हुआ भी इस सृष्टिचक्रात्मक यज्ञचक्रका जो अनुवर्तन नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है। –

''एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यो।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।''

(श्रीमद्भगवद्गीता ३.१६)

पञ्चभूतमयी सृष्टिसे प्रतिक्षण अनुप्राणित तथा परिपोषित जीवनका उपयोग और विनियोग समष्टि हितमें अवश्य कर्त्तव्य है। समष्टि जगत् का अनुवर्तन करनेसे ही व्यष्टि जीवनका कल्याण सम्भव है । अत एव शास्त्रोंने मनुष्योंके लिए यज्ञका विधान किया है । देवताओंने भी यज्ञके द्वारा भगवान् विष्णुका यजन किया है।

जगत् की अग्नीषोमात्मकताके तुल्य वागर्थात्मकता भी चरितार्थ है। अर्थके बिना शब्द तथा शब्दके बिना अर्थ सम्भव नहीं। सर्वार्थबोधक अकार, उकार, मकारघटित ओङ्कारका विलास समस्त वाङ्मय प्रपञ्च है। पञ्चीकरणकी प्रक्रियाके अनुसार भी सबमें सबका सन्निवेश सिद्ध है। अतः विवक्षावशात् प्रत्येक शब्दमें सर्वार्थबोधकता सन्निहित है। वैखरीवाव् स्थूला है। वह श्रोत्रेन्द्रियसे सुनायी देती है। चिन्तनगोचरा मनोमयी और विज्ञानमयी सूक्ष्मावाव् मध्यमा तथा पश्यन्तीरूपा है। वह शिवतत्त्वाश्रिता पराशक्तिरूपा कार्योपादानरूपा

मायास्वरूपा कुण्डलिनीरूपा है। उसके मन्त्र, पद और वर्णसंज्ञक तीन अध्व (मार्ग) शब्दात्मक उल्लास हैं एवं भुवन, तत्त्व तथा कलासंज्ञक तीन अध्व (मार्ग) अर्थात्मक हैं। इनमें परस्पर व्याप्य – व्यापक भाव है। वाक्यात्मक मन्त्रमें पदकी तथा पदमें वर्णकी व्याप्ति है। वर्णोंसे पद तथा पदोंसे वाक्य यह प्रसिद्ध तथ्य है। भुवनोंमें वर्णोंकी समुपलब्धि है; अत एव वर्णोंमें भुवनोंकी व्याप्ति है। तत्त्वोंसे भुवनोंकी संरचना है; अत एव भुवनोंमें तत्त्वोंकी व्याप्ति है। शिवाश्रिता प्रकृतिपरिणामभूता निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता – संज्ञक पञ्च कलाओंद्वारा तत्त्व व्याप्त हैं। प्रभासदृश शक्तिका सूर्यसदृश शिवसे अभेद है। (शिवपुराण – वायवीयसंहिता – पूर्वखण्ड २९)

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (श्रीमद्भगवद्गीता १०.२५), 'ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:। ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता: पुरा।।' (श्रीमद्भगवद्गीता १७.२३) यज्ञोंमें जपयज्ञ भगवान् की विभूति है। मन्त्रजपके तुल्य नामजपका अद्भुत महत्त्व है। भगवन्नाम महामन्त्र है। वेदबीज ओङ्कारका जप सबके लिए विहित नहीं है। राम, कृष्ण, शिव, अच्युत, अनन्त, गोविन्दादि भगवन्नाममें सब अधिकृत हैं। इन नामोंके जप तथा सङ्कीर्त्तनसे वेदोक्त कर्मोपासनाके फल लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्ष तथा प्रभुप्रेम सुनिश्चित है। इन नामोंके अर्थपरिज्ञान और अर्थानुशीलनसे वेदोक्त ज्ञानफल चनि:श्रेयस भी सुनिश्चित है –

''तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु केवलं मुक्तिदं यत:।।

भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते।

मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।।

मुमुक्षूणां विरक्तानां तथा चाश्रमवासिनाम्।

प्रणवत्वात्सदा ध्येयो यतीनां च विशेषत:।

राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशय:।।''

(रामरहस्योपनिषत् ५.१४-१६)

वटबीजमें सन्निहित विशाल वटवृक्षके सदृश रामनाममें समग्र विश्व सन्निहित है। अधिदैव दृष्टिसे रामनामगत रकार वह्निबीज है, आकार आदित्यबीज है और मकार चन्द्रबीज है। अग्नि वाक् के, सूर्य नेत्र तथा प्राणके और चन्द्र मनके अधिदैव हैं। वाक् से शब्दात्मक नामकी निष्पत्ति होती है। प्राणसे क्रियाकी सिद्धि होती है। मनसे रूपात्मक दृश्यप्रपञ्चका अधिगम होता है। इस प्रकार; प्रणवात्मक रामनाम जगत् की आधिदैविक धरातलपर अग्नि – सूर्य – सोमात्मकताका ख्यापक है, आध्यात्मिक धरातलपर वाक्, प्राण – मनोमयताका ख्यापक है और आधिभौतिक धरातलपर यह नाम – कर्म – रूपात्मकताका ख्यापक है। अधोमुख सन्निकट सूर्यका नाम अग्नि है। ऊर्ध्वमुख दूरस्थ अग्निका नाम सूर्य है। इस दृष्टिसे रामनामगत आदित्यबीज आकारका वह्निबीज रकारमें सन्निवेश कर देनेपर प्रणवात्मक रामनाम जगत् की आधिदैविक धरातलपर अग्नि – सोमात्मकताका ख्यापक है, आध्यात्मिक धरातलपर वाङ्मयता तथा मनोमयताका ख्यापक है और आधिभौतिक धरातलपर नाम – रूपात्मकताका ख्यापक है –

"शिवसूर्येन्दुरूपवान् '' (रामरहस्योपनिषत् ५.७)

“वह्निसोमकलात्मकम्'' (रामरहस्योपनिषत् ५.८)

“अग्नीषोमात्मवं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम्।

यथैव वटबीजस्थ: प्राकृतश्च महाद्रुम:।।

तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

बीजोक्तमुभयार्थत्वं रामनामनि दृश्यते।।''

(रामरहस्योपनिषत् ५. ९, १०)

श्रीभगवान् का मङ्गलमय नाम ‘भवतवत्सलकल्पतरु ’ है । उसके स्मरणसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – संज्ञक पुरुषार्थचतुष्टय सुलभ होता है ।

ॐ, तत्, सत् – यह त्रिविध वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरका निर्देश कहा गया है। प्रलयोत्तर महाकल्पके प्रारम्भमें उसीसे सर्वविध यज्ञप्रतिपादक वेद, सर्वविधयज्ञसाधक ब्राह्मण और सर्वविधयज्ञ समुत्पन्न हुए। वेदज्ञ मनीषियोंकी विधिसम्मत यज्ञ, दान तथा तप:संज्ञक क्रियाओंका सम्पादन ‘ॐ’ इस भगवन्नामका उच्चारण करके ही होता है। “ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते '' (मुण्डकोपनिषत् २.४), ‘तदर्थेऽखिलचेष्टितम्’ (श्रीमद्भागवत ३.२७) आदि वचनोंके अनुसार ‘तत् ’ संज्ञक ब्रह्मको लक्ष्य मानकर तदर्थ यज्ञ – दान तथा तप:संज्ञक कृत्योंका फलाभिसन्धिरहित मुमुक्षुओंद्वारा निर्वाह किया जाता है। ‘सत् ’ इस परमात्मनामका सद्भाव, साधुभाव तथा प्रशस्तकर्मोंमें प्रयोग किया जाता है। यज्ञ, तप तथा दानमें; तद्वत् तदर्थ कर्ममें जो स्थिति है; वह भी सत् ही कही जाती है।

वेदान्तवेद्य ब्रह्म सत्, चित् तथा आनन्द है। उसके ॐ, तत् तथा सत् संज्ञक त्रिविध निर्देश हैं। सत् का ‘सत् ’ नामसे ही निर्देश है। चित् का ‘तत् ’ इस नामसे निर्वचन है। आनन्दका ‘ॐ’ यह अभिधान है।

विवक्षावशात् सत् – प्रधान ऋव्, चित् – प्रधान यजु: और आनन्दप्रधान साम है। सत् – प्रधान यज्ञ, चित् – प्रधान वेद तथा आनन्दप्रधान ब्राह्मण हैं।

यह जगत् ज्ञानस्वरूप परब्रह्मका विवर्त तथा शब्दब्रह्मका समुल्लास है। सृष्टि स्रष्टाके सङ्कल्पका समुल्लास है। ज्ञान तथा शब्दका समन्वय सङ्कल्प है। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर निज निर्देशात्मक नामोंके द्वारसे तद्वत् ‘भू:’ आदि वस्तुनिर्देशात्मक नामोंके द्वारसे स्वयंके अभिव्यञ्जक अर्थात् सृष्टिके स्रष्टा सिद्ध हैं।

उक्त रीतिसे वेदोक्त कर्म अभ्युदय और नि:श्रेयसप्रद सिद्ध होता है। लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष और अपवर्गकी योग्यता अभ्युदय है। जन्ममृत्युकी अनादिपरम्पराके समूलोच्छेदसे उपलक्षित स्वरूपस्थिति नि:श्रेयसरूप मोक्ष है।

इन्द्र, यम, वरुण, कुबेरादि दिवपाल एवम् सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और उनके भव्य लोकोंकी सृष्टि वैदिक कर्मोपासनाकी समुज्ज्वल स्फूर्ति है।

उक्त रीतिसे भगवन्नाममें नामनिष्ठके प्रति अर्थकी समाकर्षकता तथा अभिव्यञ्जकता उभयविध क्षमता सन्निहित है। अपूर्व मादकता तथा आह्लादकताके कारण भगवन्नाम कामद है। सर्वधारक सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी चित्प्रधान अभिव्यक्ति होनेके कारण भगवन्नाम धर्मरूप तथा धर्मप्रद है। तत्पदार्थ, त्वं पदार्थ तथा

दोनोंके ऐक्यका साधक होनेके कारण भगवन्नामकी मोक्षप्रदता भी सिद्ध है।

प्रार्थना

प्रात: ६, मध्याह्न १०, अपराह्न २, सायं ६ एवम् रात्रि १०बजे सर्वहितकी भावनासे निम्नलिखित प्रार्थना प्रत्येक सत्रमें पाँच – पाँच बार व्यक्तिगतरूपसे तथा आध्यात्मिक संस्थानोंके माध्यमसे आस्था तथा उत्साहपूर्वक नित्य कर्त्तव्य है। छान्दोग्योपनिषत् २.१४.१ तथा महाभारत–शान्तिपर्व ३३७.३०के अनुसार प्रतिदिन पाँच बार भगवद्भजनसे सर्वार्थसिद्धि सुनिश्चित है । –

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खल: प्रसीदताम्

ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे

आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।

(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

''हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो, दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो ! सब एक – दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे आप स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

अनुरोध

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरी उड्यानपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्यस्वामीनिश्चलानन्दसरस्वती महाभागद्वारा संस्थापित स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान' से प्रकाशित धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, आयुर्वेद, गणित तथा राष्ट्रविषयक सुदुर्लभ शताधिक ग्रन्थोंका अनुशीलनकर सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें तथा स्वयंके सर्वविध उत्कर्षमें जीवनका उपयोग और विनियोग अवश्य करें; तद्वत् सुयोग्य पाठकों और संस्थानों तक संस्थानकी पुस्तकोंको पहुँचानेका प्रमोदपूर्ण प्रयास अवश्य करें।

भवदीय
स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसञ्चालक
स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती
निज सचिव
श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ -स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे

स्वस्तिप्रकाशन

प्रकाशित पुस्तकें

1.

शुकसुधा

2.

श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)

3.

श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)

4.

नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)

5.

कुन्तीस्तुति: (विस्तृत व्याख्यासहित)

6.

श्रीराधारस और रसिकशेखर

7.

श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव

8.

पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी

9.

सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त

10.

विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त

11.

स्वस्तिकगणित

12.

सार्वभौमसनातनसिद्धान्त

13.

सारार्थदीपिका

14.

शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या

15.

सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद

16.

जीवनज्योति

17.

शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य

18.

गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति

19.

अनमोलवचन

20.

नीति और अध्यात्म

21.

नीतिसूक्तम्

22.

आयुर्विज्ञान

23.

अध्यात्मरहस्य

24.

श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय

25.

सनातनसन्देश

26.

व्रतस्वरूपविमर्श

27.

बालजागरण

28.

श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व

29.

श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरषार्थ चतुष्टय

30.

पूर्वाम्नाय –पुरीपीठ – परिचय – प्रकल्प

31.

श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा

32.

व्यूहरचना

33.

अङ्कपदीयम्

34.

गणितदर्शन

35.

पावनसन्देश

36.

दिग्दर्शन

37.

राष्ट्ररक्षा

38.

परमार्थसार

39.

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

40.

करणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा

41.

The Eternal Principles Of Happy Life

42.

श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व

43.

क्रान्तिबिन्दु

44.

दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)

45.

अवतारमीमांसा

46.

विचित्र सम्वाद

47.

वैदिकार्षगणित

48.

प्रवचनपीयूष

49.

बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त

50.

नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्

51.

गणितचिन्तामणि

52.

चतुराम्नाय - चतुष्पीठ

53.

The Philosophy of Mathematics

54.

Swastik - Ganita

55.

Nature of Numbers

56.

.Bhagawan Shree Krisna

57.

श्रीगीतासुधा

58.

श्रीराधासुधा

59.

जगदीश्वर, जीव और जगत्

60.

भागवतसुधा

61.

श्रीजगन्नाथाष्टकम्

62.

श्रीसागर - गङ्गा - आरती

63.

ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ

64.

भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)

65.

वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश

66.

शून्यैकसिद्धि और द्व्याङ्कपद्धति

67.

सनातनधर्म

68.

Sanatan - Dharma

69.

Ganita Chintamani

70.

पूर्वाम्नाय - पुरीपीठ - परिचय- प्रदीप

71.

उद्बोधन

72.

सनातनधर्म - प्रश्नोत्तर - मालिका

73.

भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)

74.

श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)

75.

योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)

76.

Bhagawan Shree Ram

77.

शून्यैकसिद्धि और द्व्याङ्कपद्धति (अङ्ग्रेजी अनुवाद)

78.

द्व्याङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा

79.

चित्रालोक

80.

बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

81.

भारत - वैभव

82.

वेदान्तरससार - सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार

83.

सनातनसिद्धान्त

84.

द्व्याङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि

85.

श्रीशिवावतार-भगवत्पाद-आदिशङ्कराचार्य

86.

हस्तामलकस्तोत्रम्

87.

तोटकस्तुति:

88.

मूकाम्बिकास्तुति:

89.

श्रीहरिशङ्करस्तुति:

90.

स्वरूपसिद्धि:

91.

गणितसूत्रम्

92.

राष्ट्रोत्कर्ष-अभियान

93.

राजधर्म

94.

सूत्रगणितम्

95.

सनातनसन्देश

96.

गुरुवंश-मठाम्नाय-दिग्दर्शन-सेतु- महानुशासनम्

97.

धर्मेश्वरसंहिता

98.

चतुर्व्यूह-परिशीलन

99.

सनातनवर्णव्यवस्थाकी उपयोगिता

100.

दिव्यानुभूति - जीवनज्योति . द्वितीयभाग

101.

गीताजयन्ती

102.

महाकुम्भकी दिशा और दशा

103.

पूज्य श्रीधर्मसम्राट् के महत्त्वपूर्ण उपदेश

104.

गीतामान

105.

त्रिपथगा

106.

प्रणवप्रकल्प

107.

प्रचारप्रकल्प

108.

ज्योतिष - दर्शन

109.

नीतिनिधि

110.

उद्गम

111.

अकारो वै सर्वा वाव्

112.

गीताका सार्वभौम सिद्धान्त

113.

'विचारपीयूष' - सारार्थदिग्दर्शन

114.

शुभसन्देश

115.

श्रीमद्भगवद्गीताकी अद्भुत शैली

116.

शून्यकी प्रथमाङ्कता तथा भावरूपता

117.

पूर्वाम्नाय – वैदिकार्ष – गणित

118.

आक्षेपपरिहार–तथ्यप्रकाश

119.

भारतविमर्श (महाभारतके ऐतिह्य तथ्यका नीति तथा अध्यात्मगर्भित तात्पर्य)

120.

नीतिसावित्री

121.

अवताररहस्य

122.

पत्रकारिताकी स्वस्वस्थविधा

123.

श्रीशङ्कराचार्यरजीवनचरित

124.

विकाश – विमर्श